अगस्त्य संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम आगमशास्त्र

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

पंचाङ्गहिः प्रदेशे तु वृत्ताकारं यथा लिखेत् सर्वदुःखोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ७८ आयुरारोग्य
मैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके स गच्छति ७९ इत्यगस्त्यसंहिता
यां परमरहस्ये हनुमान्मंत्रे श्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२ श्लोकसंख्या २०००
लिष्यतं लालासीताराम श्री चित्रकूटस्थाने श्रीरामजी रामघाट मंदाकिनी पेसुरनी तटे संगमे ॥
पुस्तकं श्री श्री श्री श्री महंत आचार्य वलभद्रदासजी की वैसाख वदि १२ संवत् १९०२ रामः रामः रामः

महावीर मन्दिर प्रकाशन

'अगस्त्य-संहिता' वैष्णवागम पांचरात्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें रामोपासना का विस्तारपूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। यद्यपि 1898 ई. में लखनऊ से देवनागरी लिपि में तथा 1909 ई. में कोलकाता से बंगला अनुवाद के साथ बंगला लिपि में इसका प्रकाशन हुआ है, किन्तु वर्तमान में यह ग्रन्थ सर्वथा अनुपलब्ध है।

सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय से प्राप्त अनेक पाण्डुलिपियों तथा अन्य अनेक आधार-ग्रन्थों का उपयोग करते हुए महावीर मन्दिर, पटना के प्रकाशन विभाग के द्वारा यह 'अगस्त्य-संहिता' हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित की जा रही है। इसके संपादक पण्डित भवनाथ झा महावीर मन्दिर प्रकाशन के प्रभारी हैं। पाण्डुलिपि विज्ञान के गम्भीर विद्वान् तथा मिथिलाक्षर एवं बंगला लिपि के ज्ञाता भवनाथ झा ने स्वयं पाण्डुलिपियों तथा आधार-ग्रन्थों का अवलोकन कर इसका सम्पादन किया है।

अवकाशप्राप्त आइ. पी. एस. अधिकारी, कुशल प्रशासक, इतिहास तथा संस्कृत के गम्भीर अध्येता विद्वान्, बिहार राज्य धार्मिक न्यास पर्षद् के प्रशासक तथा महावीर मन्दिर की न्यास समिति के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने इस पुस्तक का आमुख लिखकर इस प्रकाशन की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है।

महावीर मन्दिर प्रकाशन माला का 25वाँ पुष्प

अगस्त्य-संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम वैष्णवागमशास्त्रीय ग्रन्थ

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

आमुख लेखन

आचार्य किशोर कुणाल

महावीर मन्दिर प्रकाशन

प्रकाशक :

महावीर-मन्दिर-प्रकाशन

पाणिनि परिसर, बुद्धमार्ग, पटना-800 001

प्रथम संस्करण

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, संवत् 2066 (2009 ई0)

मूल्य : पेपरबैक – 50 रुपये

पुस्तकालय संस्करण– 200 रुपये

प्राप्तिस्थान :

धर्मग्रन्थ विक्रय केन्द्र,

महावीर मन्दिर, पटना

मुद्रक :

प्रकाश ऑफसेट, धरहरा कोठी, पटना

पादद्वयं समं सम्यगुरुमूलद्वयोपरि।।47।।

कृतं पद्मासनं ह्येतच्छ्रेष्ठं सर्वेषु कर्मसु।

दोनों पैरों को भली भाँति जंघा की जड़ के ऊपर रखकर किया गया पद्मासन सभी कर्मों में श्रेष्ठ है।

वामपादे निधायाङ्कं मूलं पादं च दक्षिणम्।

वामाङ्काग्रे दृतिर्ह्येतद्[1] वीरासनमुदीरितम्।।48।।

बाँये पैर को जमीन पर टिकाकर घुटना पर बाँयी केहुनी को टिका लें। तथा बायें पैर को मोड़कर भूमि पर रखें। इस स्थिति में वाँयीं ओर दृष्टि केन्द्रित करने पर वह वीरासन कहलाता है।

योगासनं चमूष्काधः पार्ष्णि दत्वा पदान्तरम्।

जङ्घाद्वयोर्निधायैतद्योगेभीष्टं प्रयच्छति।।49।।

(यहाँ भी पाठ सन्देहास्पद है। अन्यत्र विवरण के अनुसार पद्मासन में बैठकर दोनों एँड़ियों को पेट से दबाकर दोनों जंघाओं को एक समान रखकर आगे की ओर कपाल को भूमि से सटाने पर योगासन होता है।)

वामाङ्कपार्श्वे पार्ष्णिञ्च दक्षिणं चेतरं पुनः।

पार्ष्ण्यन्तरं निधायैवं कुर्याज्जानुद्वयं समम्।।50।।

गोमूत्रासनमेतत् स्यात् सर्वाघौघविनाशनम्।

बायीं काँख के को बायीं एँड़ी पर तथा दायें काँख को दायीं एड़ी पर टिकाकर दोनों जंघाओं को समानान्तर कर लें। यह गोमूत्रासन कहलाता है, जिससे सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं।

आसनानि बहूनि स्युरेवमेव जपादिषु।।51।।

येन केनासनेनैव वीरः स्थित्वा जपादिकम्।[1]

इस प्रकार जप आदि में अनेक आसन है। किसी भी एक आसन में वीर की तरह निर्वाह करते हुए जप आदि करें।

कुर्वीत भक्तियुक्तस्तु भावयेत् पुरुषोत्तमम्।।

एवं यः कुरुते पूजाजपहोमादिकं मुने।।52।।

सर्वेषामिह पूज्योऽयमिह लोके परत्र च।

---

1. क. मे अनुपलब्ध।

भक्तिभाव के साथ उपर्युक्त कर्म करें और पुरुषोत्तम की भावना करें। जो इस प्रकार पूजा, जप, होम आदि करते हैं, वे इस संसार में और परलोक में सबके द्वारा पूजित होते हैं।

पूजा जपश्च होमश्च मन्त्राणामुद्धृतिस्तथा।।53।।
दीक्षाभिषेकमार्गस्तु दर्शितोऽत्र तपोनिधे।
पूजोपकरणादीनां लक्षणान्यपि सुव्रत।।54।।
दर्शितानि प्रयत्नेन सर्वं भक्त्यावधारय।
सुतीक्ष्णाभिहितं यत्नाद् यदेतद्[1] भुक्तिमुक्तिदम्।।55।।
नावैष्णवेभ्यो वक्तव्यं न श्राव्यमिति मे मतिः।
यत्नेन विष्णुभक्ताय चार्हते[2] देयमित्यपि।।56।।

पूजा, जप, होम, मन्त्रों की आहुति तथा दीक्षा और अभिषेक का मार्ग मैंने मूल रूप से बतला दिया। पूजा में प्रयुक्त होनेवाले उपकरणों के लक्षण भी प्रयत्नपूर्वक मैंने बलता दिया, उन सबको भक्तिभाव से समझो। हे सुतीक्ष्ण! मैंने जो पूजा की विधि तुम्हें बतलायी, उसे किसी वैष्णव से भिन्न व्यक्ति के सामने मत बोलना, न उन्हें सुनाना, यह मेरा मत है। विष्णु के भक्त जो इस विधि को ग्रहण करने में समर्थ हों, उन्हें यत्नपूर्वक देना चाहिए, यह भी मेरा मत है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये आसनमुद्राप्रदर्शनं नामाष्टादशोऽध्यायः।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

अगस्तिरुवाच

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्येषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।।1।।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः।
गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकः।।2।।

अगस्त्य बोले– हे सुतीक्ष्ण! गाणपत्य, शैव, शाक्त, सौर मन्त्रों में भी वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है तथा मनोरथ सिद्ध करनेवाला है। वैष्णव-मन्त्रों में भी राममन्त्र गाणपत्य आदि मन्त्रों में करोड़ों गुना अधिक फल देनेवाला है।

1. घ. यद्वद्वैष्णवं। 2. क. चार्थिने। 3. घ. °कामदोऽयं।

मन्त्रेषु तेष्वऽप्यनायासफलदोऽयं[3] षडक्षरः।
षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघनिवारणः।।3।।

राममन्त्र भी अनेक हैं; किन्तु उनमें भी अनायास फल देनेवाला यह छह अक्षरों का मन्त्र है। यह छह अक्षरों का मन्त्र सभी पापों का नाश करनेवाला है।

मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः।
दैनन्दिनं च दुरितं पक्षमासर्त्तुवर्षजम्।।4।।

इसे मन्त्रराज कहा गया है जो सभी मन्त्रों में उत्तम है। पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष में किये गये पापों को नाश करने के साथ प्रतिदिन किये गये पाप को भी नाश करता है।

सर्वं दहति निःशेषं ऊर्णाजालमिवानलः।[1]
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च।।5।।

जैसे आग ऊन से बने जाल को निःशेष कर जला देता है, उसी प्रकार यह मन्त्र हजारो ब्रह्महत्या और ज्ञानवश या अज्ञानवश जो पाप किये गये हैं उन्हें जला देता है।

स्वर्णस्तेयसुरापानं गुरुतल्पायुतानि च।।6।।
कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि।
सर्वाण्यपि शमं यान्ति[2] राममन्त्रानुकीर्तनात्।7।।

सोने की चोरी, मद्यपान, गुरु की शय्या पर शयन आदि जो करोड़ों करोड़ों महापाप हैं और अनेक उपपातक भी हैं, वे सब श्रीराम के मन्त्र के जप से शान्त हो जाते हैं।

भूतप्रेतपिशाचाद्याः कूष्माण्डाः ग्रहराक्षसाः।
दूरादेव पलायन्ते[3] राममन्त्रप्रभावतः[4]।।8।।

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, राक्षस श्रीराम के मन्त्र के प्रभाव से दूर भाग जाते हैं।

मालिन्यमपि सांकार्य्यं यच्च यावच्च दूषितम्।
सर्वं विलयमाप्नोति राममन्त्रे तु कीर्तिते।।9।।

---

1. घ. तूर्णाचलमिवानलः। 2. घ. विनश्यन्ति।3. क. प्रधावन्ति।4. राममन्त्रप्रसादतः।
5. शासिताः।

मलिनता, संकरता और जो जितने दोष हैं, सब श्रीराम का मन्त्र जपने से विलुप्त हो जाते हैं।

आब्रह्मबीजदोषाश्च नियमातिक्रमोद्भवाः।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणां स्युर्मन्त्रेणानेन नाशिताः[5]।।10।।

ब्रह्म से लेकर उत्पत्ति के बीज पर्यन्त जो दोष होते हैं या नियम का त्याग करने से स्त्रियों और पुरुषों में जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे सब इस मन्त्र से नष्ट हो जाते हैं।

येषु येष्वेष्वपि देशेषु रामः परमुपास्यते।।11।।
दुर्भिक्षादिभयान्येषु न भवन्ति कदाचन।

जिन जिन देशों में श्रीराम परम देवता के रूप में पूजित होते हैं, वहाँ दुर्भिक्ष आदि का भय कभी नहीं रहता।

शान्तः प्रसन्नो वरदोऽक्रोधनो भक्तवत्सलः।।12।।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते।[1]

संसार में इस मन्त्र के समान शान्त, प्रसन्न, वर देनेवाला, सौम्य तथा भक्तों के प्रति संतान का भाव रखनेवाला मन्त्र नहीं है।

अनेनाराधितो रामः प्रसीदत्येव सत्वरम्।।13।।
प्रददात्यायुरैश्वर्य्यं[2] सम्मानोत्तमतामपि।

इस मन्त्र से पूजित श्रीराम शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और आयु, ऐश्वर्य, सम्मान तथा श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

य एवमुक्तमार्गेण मन्त्राराधनतत्परः।14।।
सकामो भुक्तिमाप्नोति निष्कामो मुक्तिमेति च।
प्राप्नोत्युभयकामस्तु भुक्तिं मुक्तिं न संशयः।।15।।

जो इस प्रकार पूर्वोक्त पद्धति से मन्त्र के आराधन में तत्पर होते हैं, वे सकाम होने पर भोग प्राप्त करते हैं और निष्काम होने पर मुक्त हो जाते हैं और दोनों चाहनेवाले भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रुतिस्मृतिपुराणार्थनिश्चय ज्ञानवित्तम।
सन्देहं छिन्धि पृच्छामि तातात्रानुग्रहं कुरु।।16।।

1. घ. में अनुपलब्ध। 2. घ. ददात्यायुष्यमैश्वर्यं।

सुतीक्ष्ण बोले– हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ महामुनि अगस्त्य! आपने वेद और पुराणों के प्रयोजन के विषय में सब कुछ जानकर उसका निश्चय कर लिया है। हे तात! मेरे मन में एक सन्देह है। मैं पूछ रहा हूँ। इस सन्देह का निवारण करें। इस विषय में आप कृपा करें।

आत्मानुभवरूपेण साक्षात्कारेण केवलम्।
पुनरावृत्तिरहितं शाश्वतं ब्रह्म यात्यपि।।17।।
इति श्रुत्यादितत्त्वज्ञाः प्रवदन्ति मनीषिणः।

वेद आदि का तत्त्व जाननेवाले मनीषीगण कहते हैं कि आत्मा का जब अनुभव होता है, तब ब्रह्म के साथ साक्षात्कार कहलाता है, उससे इस संसार में पुनर्जन्म से रहित नित्य ब्रह्म की प्राप्ति होती है।,

श्रीमताभिहितं राममन्त्रानुष्ठानतत्पराः।
भुक्तिं मुक्तिं च विन्दन्ति कथमेतन्निबोधय।।18।।

किन्तु आपने कहा है कि श्रीराम के मन्त्र का जो अनुष्ठान करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों पा लेते हैं। यह कैसे होता है यह हमें बतलायें।

निवृत्तिरेव मुक्तिश्च प्रवृत्तिर्भुक्तिरुच्यते।
उभयोरप्येक एव कथं मार्गो भवेद् वद।।19।।

जब विमुख होना मुक्ति है और प्रवृत्त होना भुक्ति है, तब दोनों विपरीत वस्तुओं का एक मार्ग कैसे हो सकता है?

अगस्तिरुवाच

त्वया चैव यदुक्तं यत् सत्यं सत्यविदां वर।
सर्वजन्मसुखोच्छित्तिर्दुःखोच्छित्तिश्च तत्त्वतः।20।।
निवृत्तिलक्षणा ह्येषा मुक्तिरित्यभिधीयते।

अगस्त्य ने कहा– हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ, सुतीक्ष्ण! तुमने जो कहा वह सत्य है। वस्तुतः जन्म-ग्रहण सम्बन्धी सभी सुखों तथा दुखों का नाश, जो एक प्रकार का त्याग है, मुक्ति के नाम से जाना जाता है।

विषयात्यन्तसंसर्गः करणानां हृदा सह।।21।।
भुक्तिः प्रचक्ष्यते लोके वैषम्यमुभयोरपि।

भोग के साधनों का हृदय के साथ जो अत्यन्त संयोग है, वह संसार में भोग कहा जाता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे से अलग है।

तथाथात्मानुसन्धानमुभयत्रापि दृश्यते।।22।।
मुक्तिरात्मानुसन्धाने चात्मावस्थानमेव हि।
एतदस्त्येव तत्त्वञ्च सर्वतत्त्वविदां सताम्।।23।।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च सर्वदात्मानुभाविनाम्।

चूँकि आत्मा का अनुसंधान दोनों ही स्थलों पर है और आत्मा के अनुसंधान के द्वारा आत्मा में स्थित होना मुक्ति है। हे तत्त्वज्ञ! यही कारण है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में हमेशा आत्मा का ही अनुभव होता है, यही दोनों में साम्य है।

किञ्च रामोऽहमित्येव सर्वदानुस्मरन्ति ये।।24।।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः।

और भी, 'मैं राम हूँ' ऐसा जो हमेशा चिन्तन करते हैं, वे संसारी न होकर राम-स्वरूप हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

राम एवात्र भोक्ता च भोग्यमाद्य[1] भुजि क्रिया।।25।।
एतस्मिन्नविशिष्टे तु किमसत् सत्प्रसंजनम्।
अतो न मुक्तिमार्गस्य रोधिनी भुक्तिरिष्यते।।26।।

हे आर्य सुतीक्ष्ण! श्रीराम ही भोक्ता हैं, प्रथम भोग्य हैं तथा भोजन रूप क्रिया भी वे ही है। उनके अविशिष्ट अर्थात् सामान्य अर्थात् सबमें उपस्थित रहने पर कौन सा असत् उत्पन्न हो सकता है? अतः भोग मोक्ष के मार्ग का अवरोधक नहीं है।

अनेन विधिना रामं य एवमनुतिष्ठति।
स भुक्तिमपि मुक्तिञ्च लभते नात्र संशयः।।27।।

इस विधि से जो श्रीराम का अनुष्ठान करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करतें हैं, इसमें सन्देह नहीं।

यथा विधिनिषेधौ तु मुक्तिं नैवापसर्पतः।
तथा न स्पृशतो रामोपासकं विधिपूर्वकम्।।28।।

---

1. क. एवं घ. भोज्यमाद्यं।

जिस प्रकार विधि और निषेध दोनों मुक्ति की ओर ही जाते हैं, उसी प्रकार विधिपूर्वक रामोपासक को वे दोनों स्पर्श भी नहीं कर पाते।

सदा रामोऽहमित्येव चिन्तयेदप्यनन्यधीः।
न तस्य विहितं लोके निषिद्धं च न विधीयते।।28।।

'मैं सदा श्रीराम हूँ' ऐसा एकाग्र होकर सोचें। ऐसे व्यक्ति के लिए संसार में कोई विधान अथवा निषेध नहीं रह जाता है।

यथा घटश्च कलश एकार्थस्याभिधायकः।
तथा ब्रह्म च रामश्च नूनमेकार्थतत्परः।।29।।

जैसे 'घट' शब्द एवं 'कलश' शब्द दोनों एक ही पदार्थ का अभिधान करते हैं। उसी प्रकार 'ब्रह्म' और 'राम' शब्द का एक ही अर्थ होता है।

अतो रामोऽहमित्येव तात्पर्य्यं प्रवदन्ति ये।
रामनामत एव स्युर्न तेषां विहितादिकम्।।30।।

इसलिए 'मैं राम हूँ' यही भाव जो बोलते हैं, वे श्रीराम के नाम के कारण राम ही हो जाते हैं, उनके लिए विधि-निषेध आदि नहीं होते।

दातव्यमस्मै ददति ये यावत्किञ्चिदन्वहम्।
उदकौदनवस्त्राणि रामायैव न संशयः।।31।।
अतो ब्रह्मविदे दत्तमानन्त्याय प्रकल्प्यते।

'ऐसे भक्त को यह दे रहा हूँ' ऐसा सोचकर जो जितनी मात्रा में जल, भात, वस्त्र आदि दान करते हैं, वे राम को ही समर्पित करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को दिया गया दान अनन्त फल देनेवाला होता है।

ये दुष्यन्त्यपि निन्दन्ति तत्पापफलभागिनः।।32।।
[1]कुटुम्बिनो दरिद्राः स्युर्दुःखिनः स्युर्न संशयः।

जो ब्रह्मज्ञानियों का दोष निकालते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, वे उस पाप के भागी होते हैं। वे दुःखी होते हैं तथा उनके परिवार के लोग भी दुःखी होते हैं।

ततः सुतान् समुत्पाद्य स्वयमेव दहेदपि।।33।।
कारागृहेषु सर्वेषु निर्निमित्तं निगृह्यते।

तब वे अनेक पुत्रों को उत्पन्न कर स्वयं भी जलते रहते हैं तथा सभी प्रकार के बन्धन रूपी कारागार में विना किसी कारण के बाँधे जाते हैं।

1. घ. यहाँ से दो श्लोक तक क. में अनुपलब्ध। 2. घ. कृतेप्सुभिः।

अहो स्वजनभाग्यस्य यथावत्तत् क्षयं भवेत्।।34।।

अतो ब्रह्मविदां द्वेषो न कर्त्तव्यः शुभेच्छुभिः[2]।

निन्दा चैव न कर्त्तव्या हितमेव समाचरेत्।।।35।।

अपने कुटुम्बों के भाग्य की तरह उनका भी ह्रास होता है। अतः जो अपनी भलाई चाहते हों, वे ब्रह्मज्ञानियों से द्वेष न करें. उनकी निन्दा न करें; केवल भलाई का कार्य करें।

ये स्तुवन्त्यनुमोदन्ति ददत्यस्मै मनीषिणः।

तत्पुण्यमखिलं लब्ध्वा तद्गतिं प्राप्नुवन्त्यपि।।36।।

जो उनकी स्तुति करते हैं; उनका समर्थन करते हैं, उन्हें दान देते हैं वे बुद्धिमान् व्यक्ति अपने सभी कर्मों से उनके पुण्यों को पाकर उनकी गति को भी प्राप्त करते हैं।

ज्ञात्वा तमेवमात्मानं कृत्यं कुरु निरन्तरम्।

एतेनैव तवाभीष्टं भविष्यति न संशयः।।37।।

उसी आत्मा को जानकर लगातार कर्म करो। इसी से तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

त्यज[1] दुर्जनगोष्ठीषु विहारेच्छां समाचर।

हितमेव सतां नित्यमहिंसातत्परो भव।।38।।

दुर्जनों की गोष्ठी में स्वच्छन्द होकर रंगरेलियाँ मनाने की इच्छा न करो; प्रतिदिन सज्जनों के कल्याण की बात करो और अहिंसा के लिए कमर कस लो।

तत्प्राप्तिसाधनान्यष्टौ तानि वक्ष्यामि तच्छृणु।

यमो नियमसंज्ञश्च आसनं च तृतीकम्।।39।।

प्राणायामश्चतुर्थश्च प्रत्याहारश्च पञ्चमः।

धारणा च तथा ध्यानं समाधिरिति सत्तम।।40।।

हे सत्तम! उस श्रीराम को पाने के आठ साधन हैं, जिन्हें सुनो– यम, नियम और तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवाँ प्रत्याहार इसके बाद धारणा, ध्यान और समाधि।

---

1. घ. त्यजन्।

प्रत्येकमेषां वक्ष्यामि लक्षणानि च सुव्रत।
तद्विविच्य प्रवक्ष्यामि तत्तल्लक्षणमप्यहो।।41।।

हे सुव्रत! इनके प्रत्येक का लक्षण मैं कहूँगा फिर उनका विवेचन कर उनका लक्षण कहूँगा।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमाः दश।।42।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, कोमलता, क्षमा, धैर्य, मिताहार, शौच ये दश यम हैं।

सर्वेषामपि जन्तूनामक्लेशजननं पुनः।
वाङ्मनः कर्मभिर्नूनमहिंसेत्यभिधीयते।।43।।

सभी प्राणियों को वचन, मन एवं कर्म से कष्ट न पहुँचाना अहिंसा कही जाती है।

यथादृष्टश्रुतार्थानां स्वरूपकथनं पुनः।
सत्यमित्युच्यते धीरैस्तद् ब्रह्मप्राप्तिसाधकम्।।44।।

जैसा देखा गया हो और सुना गया हो, उसी रूप में यदि पुनः कहा जाये तो उसे धीरों ने सत्य कहा है, यह सत्य ब्रह्म की प्राप्ति का साधक है।

तृणादेरप्यनादानं परस्य चेत् तपोधन।
अस्तेयमेतदप्यङ्ग ब्रह्मप्राप्तेः सनातनम्।।45।।

हे अंग! सुतीक्ष्ण! दूसरे का घास तक नहीं लेना अस्तेय है, जो ब्रह्म की प्राप्ति का सनातन साधन है।

अवस्थास्वपि सर्वासु कर्मणा मनसा गिरा।[1]
स्त्रीसंगतिपरित्यागो ब्रह्मचर्य्यं प्रशिक्षते।।46।।

सभी अवस्थाओं में कर्म, मन एवं वचन से स्त्री की संगति का परित्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है।

परेषां दुःखमालोक्य स्वस्येवालोच्य तस्य तु।
उत्सादनानुसंधानं दयेति प्रोच्यते बुधैः।।47।।

1. घ. मनसापि वा।

दूसरों का दुःख देखकर 'यह दुःख मेरा है' ऐसा समझकर उसे हटाने हेतु जो चिन्तन किया जाये, उसे बुद्धिमान् दया कहते हैं।

व्यवहारेषु सर्वेषु मनोवाक्कायकर्मभिः।
सर्वेषामपि कौटिल्यराहित्यं त्वार्जवं भवेत्।।48।।

सभी प्रकार के व्यवहारों में मन, वचन एवं कर्म से सबके प्रति कुटिलता का त्याग करना कोमलता है, वह लाना चाहिए।

सर्वात्मना सर्वदापि सर्वत्राप्यपकारिषु।
बन्धुष्विव समाचारः क्षमा स्याद् ब्रह्मवित्तम।।49।।

हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ! हर प्रकार से, हमेशा, हर स्थान पर अपकार करनेवालों के प्रति भी भाई-बन्धु के समान आचरण करना क्षमा है।

इच्छाप्रयत्नराहित्यं यातेषु विषयेष्वपि।
नो भवेत् तां धृतिं धीराः प्रवदन्ति सतां वरः।।50।।

बीती हुई बातों के सम्बन्ध में इच्छा और उसके लिए प्रयत्न न करना धृति कहलाता है ऐसा धीर लोग कहते हैं।

भोज्यस्यैव चतुर्थांशं भोजनं स्वस्थचेतसः।
अत्युष्णकटुतिक्ताम्ललवणादिविवर्जितम्[1] ।।51।।
हितं मेध्यं सुतीक्ष्णैतन्मिताहारं प्रवक्ष्यते।

जितना भोजन कर सकते हों, उसका चौथाई भाग ही भोजन है। वह अधिक गरम, कड़वा, तीता, खट्टा, नमकीन नहीं होना चाहिए। भोजन हितकर हो और पवित्र हो। वैसा भोजन करना मिताहार कहलाता है।

निर्गतं रोमकूपेभ्यो नवरन्ध्रेभ्य एव च।।52।।
मलं वदन्ति द्वाराणां क्षालनं शौचमुच्यते।
मृज्जलाभ्यां बहिः सम्यक् निर्मलीकरणं पुनः।।53।।
पूर्वोक्तभूतशुद्धान्तं शौचमाचक्षते बुधाः।
एते दश यमाः ब्रह्मन् ब्रह्मसम्प्राप्ति हेतवः।।54।।

शरीर के नौ छिद्र एवं रोमकूपों से निकले हुए पदार्थ को मल कहते हैं। इनके द्वारों को प्रक्षालित करना शौच कहा जाता है। मिट्टी और जल से शरीर के

1. घ. अत्युष्णकटुताम्बूललवणादिविवर्जितम्। 2. घ. सिद्धान्तलक्षणम्।

बाहरी अंगों का शुद्धीकरण होता है तथा पूर्वोक्त विधि से भूतशुद्धि पर्यन्त शुद्धि को बुद्धिमान् लोग शौच कहते हैं। हे ब्रह्मन्! ये दश यम हैं, जो ब्रह्म-प्राप्ति के साधन हैं।

तपश्च तुष्टिरास्तिक्यं ईश्वराराधनं तथा।
सिद्धान्तावेक्षणं[2] चैव लज्जा दानं मतिस्तथा।।55।।
जपो व्रतं दशैतानि सुतीक्ष्ण नियमाः स्मृताः।

तप, तुष्टि, आस्तिक्य भावना, ईश्वर की आराधना, सिद्धान्तों का अवलोकन करना, लज्जा, दान, मति, जप और व्रत ये दश **नियम** कहे गये हैं।

प्रत्येकमेषां वक्ष्यामि लक्षणानि तपोनिधे।।56।।
तपस्त्वनशनं नाम विधिपूर्वकमिष्यते।
अनायासोपवासेन तृप्त्यर्थं[1] नैव जीवनम्।।57।।
तुष्टिरेषावधार्य्यैतत् तत्प्राप्तिर्नानया विना।
श्रुत्याद्युक्तेषु विश्वास आस्तिक्यं स प्रचक्षते।।58।।

हे तपोनिधि सुतीक्ष्ण! इनमें से अब प्रत्येक का लक्षण कहता हूँ। विधानपूर्वक और विना प्रयास किये हुए भोजन नहीं करना **तप** कहलाता है। 'मेरा जीवन तृप्ति के लिए नहीं है' तथा 'जीवन तृप्ति के विना भी व्यर्थ नहीं है' यह धारणा बनाकर रहना **तुष्टि** है। वेदादि शास्त्रों में उक्त सिद्धान्तों पर विश्वास करना **आस्तिक्य** है।

इष्टदेवार्चनं सम्यक् विधिपूर्वकमन्वहम्।
त्रिसन्ध्यमेकवारन्तु भवत्येवेश्वरार्चनम्।।59।।

प्रतिदिन तीनों सन्ध्या में अथवा एक बार प्रातःकाल में विधानपूर्वक अपने इष्टदेव की आराधना **ईश्वर की आराधना** है।

वैष्णवागमसिद्धान्तश्रवणं मननं तथा।
श्रुतिस्मृतिपुराणादिमध्यान्तोदर्कदर्शनम् ।।60।।
सिद्धान्तश्रवणं ह्येतत् प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः।

वैष्णवागम के सिद्धान्त का श्रवण, मनन, वेद, स्मृति, पुराण आदि के श्रवण के मध्य तथा अन्त में उसके परिणाम के भी दर्शन को तत्त्वज्ञानियों ने सिद्धान्त-श्रवण कहा है।

1. घ. तृप्युत्पत्त्यैव जीवनम्।

श्रुत्यादिभिर्लौकिकैश्च यद्यदत्यन्तनिन्दितम्।।61।।
तत्राप्रवर्तनं लज्जा वाङ्मनःकर्मणामपि।

वेद या लोक में जो अत्यन्त निन्दित कर्म माना गया हो, उन कार्यों को को नहीं करना वाणी, मन और कर्मों की **लज्जा** है।

यदिष्टदेवतां ध्यात्वा तदर्पणधियान्वहम्।।62।।
सत्पात्रे दीयतेन्नादि[1] तद्दानमभिधीयते।

अपने इष्टदेव का ध्यान कर उन्हें समर्पित करने की बुद्धि से प्रतिदिन जो अन्नादि दिया जाता है, उसे **दान** कहते हैं।

तर्कैस्तदनुसन्धानं[2] सम्यक् सदसतोरपि।।63।।
शास्त्रोक्तयोर्मतिरयं तत्त्वविद्भिरुदीर्य्यते।

तर्क कर शास्त्र में उक्त अच्छे और बुरे का अनुसंधान कर तत्त्व-ज्ञान तत्त्वज्ञानियों के द्वारा **मति** कही गयी है।

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्त्तनं हि यत्।।64।।
अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जपो भवेत्।

न्यास करके करना गुरु से प्राप्त मन्त्र के अन्तर्गत आये अक्षरों की बार बार आवृत्ति **जप** कहलाता है।

कर्तव्यस्य समस्तस्य नियमग्रहणं व्रतम्।।65।।

सभी कर्तव्यों को नियमपूर्वक स्वीकार करना व्रत कहलाता है।

नियमव्यतिरेकेण सर्वं भवति निष्फलम्।
अतो नियमतः सर्वं कृत्यं साफल्यमाप्नुयात्।[3]।66।।

नियम के विपरीत सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं, अतः नियमपूर्वक सभी कृत कर सफलता पायें।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये यमनियमव्रतो नाम
एकोनविंशोऽध्यायः।

1. घ. दीयतेऽर्थादि। 2. घ. स्वतस्तदनुसंधानम्।3. घ. यमैश्च नियमैश्चैव कृतं यत् सफलं भवेत्।

अथ विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

एकत्रैव स्थिरीभावः पूर्वोक्तनियमैः सह।
मूलार्पितशरीरस्य एतदासनमुच्यते।।1।।

पूर्वोक्त नियमों का पालन करते हुए मूलाधार में अर्पित शरीर का एक स्थान पर स्थिर रहना आसन कहलाता है।

प्राणायामाँस्तथा वक्ष्ये मुमुक्षोरुपकारकान्।
यैः कृतैर्दह्यतेऽघौघः शुष्केन्धनगिरिर्मुने।।2।।

अब मोक्ष चाहनेवालों के उपकारक प्राणायामों के विषय में कहता हूँ, जिन्हें करने से पाप समूह रूपी सूखी लकड़ी का पहाड़ भस्म हो जाता है।

इन्द्रियेष्वपि ये दोषा वातपित्तकफोद्भवाः।
त्वगसृङ्मांसमेदोत्थाः मज्जास्थिचर्मसम्भवाः।[1]।3।।
एतेऽपि सर्वे दह्यन्ते प्राणस्यान्तर्निरोधनात्।
प्रायश्चित्तमघौघानां मुख्यमेतद् वदन्ति हि।।4।।

वात, पित्त एवं कफ के कारण त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि एवं चर्म में उत्पन्न जो इन्द्रियों में दोष हैं, वे भी प्राणवायु को अन्तः में रोकने से जल जाते हैं। पाप समूह का भी यह मुख्य प्रायश्चित्त कहा गया है।

पुनरावृत्तिरहितं शाश्वतं ब्रह्मकांक्षिभिः।
प्राणायामश्च सततं कर्तव्यो विधिवन्मुने।।5।।

पुनर्जन्म से रहित तथा शाश्वत पद एवं ब्रह्म का साक्षात्कार करने की इच्छा रखनेवालों के द्वारा विधानपूर्वक प्राणायाम सदा करना चाहिए।

सम्यङ्निरुध्य च प्राणानन्तःकरणमात्मनि।
स्वयमेवात्र शिष्टः सन् ब्रह्मभूयाय कल्पते।।6।।

प्राणवायु को सम्यक् रूप से रोककर आत्मा में अन्तःकरण को प्रविष्ट कराकर स्वयं को इस स्थिति में तटस्थ रखकर साधक ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

---

1. घ. त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जान्त्रशुक्रसम्भवाः।

जानुबिम्बं कराग्रेण त्रिः परामृश्य सत्त्वरम्।
प्रदद्याच्छोटिकामेकामियं मात्रा कनीयसी।।7।।
मध्यमा द्विगुणा चैव सा ज्येष्ठा त्रिगुणा स्मृता।
अधमो मध्यमश्चैव प्राणायामस्तथोत्तमः।।9।।

जानुमण्डल के ऊपर हथेली को शीघ्रतापूर्वक तीन बार फिराकर एक बार चुटकी बजाने में जो समय लगता है, उसे छोटी मात्रा कहते हैं। इसी दुगुनी मात्रा मध्यमा कहलाती है और तीन गुनी श्रेष्ठ मात्रा कहलाती है। इसी प्रकार प्राणायाम भी अधम, मध्यम और उत्तम भेद से प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं।

अधमः पञ्चदशभिः त्रिंशद्भिर्मध्यमो भवेत्।
मात्राभिरुत्तमः पञ्चचत्वारिंशद्भिरुच्यते।।10।।
प्राणायामैः कृतै शश्वत् कृतैः षोडशभिर्मुने।
दिने दिने च च यत्पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम्।।11।।
परोपतापजं पापं परद्रव्यापहारजम्।
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामैः शतं दहेत्।।12।।

पन्द्रह मात्राओं से अधम, तीस मात्राओं का मध्यम तथा पैंतालीस मात्राओं का उत्तम प्राणायाम है। नियमित रूप से सोलह बार प्राणायाम कर प्रतिदिन के पाप को नाश कर लेता है। दूसरे को कष्ट देने से, दूसरे का धन छीनने से, परायी स्त्री से मैथुन करने से जो पाप होते हैं, वे सौ बार प्राणायामों से जल जाते हैं।

महापातकजातानि ब्रह्महत्याशतानि च।
सर्वाण्यपि प्रदह्यन्ते प्राणायामैश्चतुःशतैः।।13।।

महापातकों का समूह तथा सैकड़ो ब्रह्महत्या का पाप, ये सभी चार सौ प्राणायाम से जल जाते हैं।

आदावन्ते च यत्नेन प्राणायामं समाचरेत्।
कर्मस्वपि समस्तेषु शुभेष्वप्यशुभेषु च।।14।।

सभी शुभ एवं अशुभ कर्म के प्रारम्भ और अन्त में यत्नपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए।

---

1. घ. °विधिवन्मुने।

प्राणायामैर्विना यद्यत् कृतं कर्म निरर्थकम्।
अतो यत्नेन कर्तव्या प्राणायामाः शुभार्थिना।।15।।

प्राणायाम के विना जो जो कर्म किए जाते हैं, वे व्यर्थ हो जाते हैं। अतः शुभ चाहनेवाले यत्नपूर्वक प्राणायाम करें।

यावच्छक्यं नियम्यासून् मनसैव जपेन्मनुम्।
रामं मुहुर्मुहुर्ध्यायन् पूर्वोक्तविधिवत्सुधीः[1]।।16।।

जबतक सम्भव हो प्राणवायु को रोककर श्रीराम का ध्यान करते हुए मन ही मन मन्त्र पूर्वोक्त विधि से जप करें।

[1]धारयन्नन्तरं वासून् नेत्रे किञ्चिन्निमील्य च।
परं ज्योतिः परं ध्यायन्नन्तरेव मनुर्जपेत्।।17।।

अथवा प्राणवायु को भीतर में धारण कर दोनों आँखें थोड़ा बन्द कर परम ज्योतिःस्वरूप परमात्मा का ध्यान करते हुए मन ही मन मन्त्र का जप करें।

आपादमस्तकं सम्यक् प्रविशत्यनिलो यथा।
यावतीभिस्तुमात्राभिरिन्द्रियाण्यपि धावतः।।18।।
प्रक्षुभ्यति शरीरं च तावन्मात्रं सुसंयमः।

जितनी मात्राओं के बराबर समय में मस्तक से पैर तक तथा सभी इन्द्रियों तक जैसे वायु प्रविष्ट हो रहा हो तथा शरीर हिलने लगे, उतनी मात्राओं तक प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायामैर्विना यस्य जपहोमार्चनादिकाः।।19।।
न फलन्त्येव ताः सर्वाः यत्नेनापि कृताः क्रियाः।

प्राणायाम के विना जप, होम, अर्चन आदि क्रियाएँ करते हैं, वे सफल नहीं होते हैं; चाहे वे क्रियाएँ यत्न से क्यों न किये जाएँ।

इन्द्रियाणां हृदा सार्द्धं विषयेभ्यो निवर्तनम्।।20।।
प्रत्याहारो भवेदेतत् सम्यगिन्द्रियनिग्रहः।

इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से विमुख करनेवाला तथा हृदय के साथ संयोग करानेवाला प्रत्याहार है; इससे सम्यक् प्रकार से इन्द्रिय-निग्रह होता है।

---

1. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध।

जीवस्य ब्रह्मरूपेण निर्द्धारो वाथ युक्तिभिः।।21।।
पूर्वोक्ता या तु मात्राख्या प्राणायामत्रयोद्भवा।
आत्मन्यपि स्थिरीकारश्चित्तस्येवात्र धारणा।।22।।

जीव को ब्रह्म के रूप में युक्तियों के द्वारा निर्धारित करना धारणा है अथवा पूर्व में कही गयी मात्रा से तीन बार प्राणायाम कर आत्मा में चित्त को स्थिर करना धारणा है।

सम्यगालोकनं ध्यानं रामं हृदि निधाय च।
अङ्गादिभूषणैः सार्द्धं बाहुना चरणैरपि।।23।।

सभी अंगों, भूषणों, बाहुओं और चरणों सहित श्रीराम को हृदय में धारण कर उन्हें भली भाँति देखना ध्यान है।

सत्यज्ञानसुखैकत्वप्राप्तये प्राप्तिसाधनम्।
समाधिधर्मचिन्ता स्याद् भवान्तरशतेष्वपि।।24।।
समाधिरथवा जीवब्रह्मणोरैक्यचिन्तनम्।
ब्रह्मीभूय स्वयं जीवो निरुद्धासुर्विलीनभूः।।25।।

सैकड़ो जन्मों में सत्य, ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए साधन के रूप में धर्म-चिन्तन समाधि है। अथवा जीव और ब्रह्म में एकत्व का चिन्तन करना समाधि है। इस अवस्था में जीव के प्राण अवरुद्ध हो जाते हैं और पृथ्वी का संसार विलीन हो जाता है; वह साधक ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

[1]अतोऽप्यनन्यसद्भावात् स्वयमेवावशिष्यते।
मूहूर्तावस्थितौ वापि समाधिरथवोच्यते।।

इसके बाद जीव और ब्रह्म की एकात्मकता के कारण केवल ब्रह्म की सत्ता रह जाती है। इस अवस्था में मुहूर्त भर भी रहना समाधि की दूसरी परिभाषा है।

एवमष्टाङ्गसम्पन्नो योगयुक्तः सुसंयतः।
सूर्यस्य मण्डलं भित्वा याति ब्रह्म सनातनम्।26।।

इस प्रकार आठो अंगों को नियमपूर्वक पूरा कर योग से संयुक्त योगी होकर सूर्यमण्डल का भेदन कर सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

स एवमभ्यसेन्नित्यं वीतभीः[2] शान्त एव च।
वशीकृतरिपुग्रामः[3] सोऽमृतत्वाय कल्पते।।27।।

1. क. यह श्लोक अनुपलब्ध।2. घ. विनीतः। 3. वशीकृतेन्द्रियग्रामः।4. स याति परमां गतिं।

जो प्रति दिन इस प्रकार का अभ्यास करे, वह भयमुक्त तथा शान्त होकर सभी काम-क्रोधादि शत्रुओं को वश में कर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

निरस्ताशेषदुरितः कामक्रोधादिवर्जितः।
एवमभ्यासयोगेन योगी याति परां[4] गतिम्।।28।।

सभी पापों का नाश कर काम, क्रोध आदि का त्याग कर इस प्रकार अभ्यास कर योगी परम गति को प्राप्त करते हैं।

कर्मयोगेन वा ज्ञानयोगेनाथोभयेन च।
प्राप्यते पुनरावृत्तिरहितं ब्रह्मशाश्वतम्।।29।।

कर्मयोग से, ज्ञान से अथवा दोनों से वह साधक पुनर्जन्म से रहित शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

करोत्यनुदिनं यस्तु तत्तत्फलगतस्पृहः।
जपहोमात्मकं कर्म समुन्नीयेत तत्फलम्।।30।।
सगुणं निर्गुणं चाथ ध्यायेद् यो रघुवंशजम्।[1]
कर्मानपेक्षध्यानेन स यात्येव परं पदम्।।31।।
ध्यानेन कर्मणा चैव योऽभ्यसेद्योगमन्वहम्।
स यात्येवोत्तमं स्थानं यद् गत्वा न निवर्तते।।32।।

जो प्रतिदिन कर्मों के फल के प्रति निःस्पृह होकर जप, होम आदि कर्म करते हैं अथवा उस फल को मन में लाकर सगुण अथवा निर्गुण श्रीराम का ध्यान करते हैं, वे कर्म के विना भी ध्यान से उस उत्तम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। ध्यान अथवा कर्म से जो प्रतिदिन योग का अभ्यास करते हैं, वे उत्तम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ पहुँच जाने पर पुनः कोई लौटता नहीं।

अतः[2] सुतीक्ष्ण यत्नेन योगी भव तपोनिधे।
व्रतोपवासनियमैः जन्मकोटिष्वनुष्ठितैः।।33।।
यज्ञैश्च विविधैः सम्यक् भक्तिर्भवति राघवे।
संसारसागरस्यास्य पारं प्राप्तुं यदीच्छसि।।34।।
कर्मयोगेऽथवा ज्ञानयोगे प्रविश सत्वरम्।

---

1. घ. रघुनन्दनम्।2. घ. ततः।

हे सुतीक्ष्ण! इसलिए योगी बनो। करोड़ो जन्मों में व्रत, उपवास आदि नियमों से तथा अनेक प्रकार के यज्ञों से श्रीराम में सम्यक् भक्ति का उदय होता है। इस संसार के समुद्र को यदि पार करना चाहते हो, तो कर्मयोग में अथवा ज्ञानयोग में शीघ्रता से प्रवेश करो।

सर्वदुःखाभिभूतानां भ्रान्तानां गतचेतसाम्।।35।।
त्राता स एव संसारे राघवः स्वयमेव हि।

सभी प्रकार के दुःखों से दुःखी, भटके हुए तथा चैतन्यहीन प्राणियों की रक्षा करनेवाले स्वयं श्रीराम है।

प्रक्षीणशेषपापानां ज्ञानयोगः प्रशस्यते।।36।।
कर्मयोगैस्तु सर्वेषां भवे निर्वाणसाधनम्।

जिनके सभी पाप नष्ट हो गये हैं, उनके लिए ज्ञान योग प्रशस्त हैं; किन्तु इस संसार में सबके लिए कर्मयोग के द्वारा मुक्ति का साधन मिल जाता है।

ज्ञानेन कर्मणा वापि रामं सम्यगिहार्चयेत्।।37।।
सुतीक्ष्णैतच्छरीरं तु क्षयिष्ण्वपि पतिष्णु च।[1]।
त्वगसृङ्मांसमज्ञास्थिमेदश्शुक्रमयं तनुः।।38।।
शास्त्रोपपादितं सम्यगनुतिष्ठ सनातनम्।

ज्ञान से अथवा कर्म से इस संसार में श्रीराम की सम्यक् आराधना करनी चाहिए। हे सुतीक्ष्ण! यह शरीर विनाशशील है और संयमित करने योग्य है। त्वचा, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र से बना हुआ यह शरीर है इसलिए शास्त्रों में प्राचीन काल से जो विधान किया गया है, उसका पालन करो।

कर्मयोगं तथा ज्ञानयोगं वा योगवित्तम।।39।।
श्वः करिष्यामि कर्त्तव्यमिति कश्चिद् विचिन्तयेद्।
स्वस्यास्ये स्वयमेवार्य्य मन्दाक्षो धूलिं निक्षिपेत्।।40।।

हे योग के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! हे आर्य! 'कर्मयोग अथवा ज्ञानयोग मैं कल करूँगा' यह जो कोई सोचता है, वह अन्धा जैसा अपने मुँह पर धूल झोंक रहा है।

सम्यग्वैराग्यनिष्ठस्य पारतत्त्वस्थचेतसः।
छर्दितान्ननिभाः सर्वे दृश्यन्ते विषयाः स्वयम्।।41

1. घ. क्षयिष्णु पिपतिष्णु च।

शरीरित्वमपि प्रायो विरक्तस्यैव शोभते।
विरक्तस्य तदा स्यात्तु त्याज्यं सर्वात्मना भवेत्।।42।।

सम्यक् प्रकार से वैराग्य युक्त साधक जो परम तत्त्व में ध्यान लगाये हुए हैं, उन्हें सारे विषय वमन किये हुए पदार्थ के समान स्वयं दिखाई पड़ने लगते हैं। इस शरीर की भावना भी विरक्त को ही शोभा देती है। विरक्त के लिए यह शरीर भी शीघ्र ही हर प्रकार से त्याज्य है।

अत्यमेध्यशरीरस्थं विष्ठामध्यगतादपि।
तत्त्वनिष्ठो विशेषेण प्राणिनां मनुते हितम्।।43।।
शरीरेऽस्मिन्नमेधत्वमीदृशं नाम देहिनाम्।
त्वगाद्येकैकसंस्पर्शे स्नानमेव विशोधनम्।।44।।

अत्यन्त अपवित्र शरीर में स्थित इन्द्रिय विष्ठा के बीच रहनेवाले कीड़े के समान हैं, इस शरीर को तत्त्वज्ञानी विशेष रूप से प्राणियों का केवल उपकारक मानते हैं। प्राणियों में इस शरीर की ऐसी अपवित्रता होती है, अतः त्वचा आदि प्रत्येक का स्पर्श होने पर उसकी शुद्धि स्नान है।

शृगालैरपि गृध्रैश्च नीयते यद्यहो विधिः।
विधत्ते चर्मणा चैव शरीराणि शरीरिणाम्।।45।।
तत्तु प्रतिपदं सम्यगापदां पदमीदृशम्।
ततः शरीरं विश्वस्य न उदास्ते स मूढधीः।।46।।

सियार और गीध उस शरीर के टुकड़े टुकड़े कर ले जाते हैं, यही विधि का विधान है। वे ही अवयव शरीरधारियों में चमड़ा से ढँके हुए रहते हैं। वह शरीर प्रत्येक पग पर विपत्तियों का स्थान है, अतः जो शरीर पर विश्वास करते हुए शरीर से उदासीन नहीं रहते हैं, वे विद्वान् नहीं, मूर्ख हैं।

दुःखैकानुभवार्थाय विधिनैतत्कृतं वपुः।
परमार्थविदप्येतद् वीक्षमाणो न वीक्षते।।47।।
व्यामोहिते जगत्यस्मिन् माययैव महात्मनः।
विष्णोस्तत्त्वविदप्याशु देहान्तरमुपैत्यहो।।48।।
सुखबुद्ध्या दुःखमेव भूयोप्यनुभवेत् तु यः।

केवल दुःख का अनुभव करने के लिए विधाता ने इस शरीर का निर्माण किया है। परमार्थ के ज्ञानी भी इसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं; क्योंकि इस संसार में महान् विष्णु की माया से ही वे व्यामोहित हैं। तत्त्वज्ञानी भी दूसरा शरीर पाकर पुनः मैं सुख भोग रहा हूँ, यह सोचते हुए बार-बार दुःख ही भोगने लगते हैं।

पतत्यकिञ्चनो भूत्वा कुटुम्बाभरणाकुलः।।49।।
भ्रमत्यैवातुरो भूत्वा दुःखावर्ते पुनः पुनः।
दुःखमित्यविजानाति दुःखं नैव तपोधन।।50।।
सर्वात्मना परित्याज्ये सर्वेषामपि दुःखदे।
प्रविशेत् को भवे मन्दे ततोऽप्यादौ पुनर्हतः।।51।।

वे अकिंचन होकर परिवार के भरण-पोषण में व्याकुल होते हुए इस संसार-चक्र में कूद पड़ते हैं और आतुर होकर बार-बार इसी दुःख रूपी भँवर में घूमते रहते हैं। यह संसार दुःखमय है, उसे वह जीव पहचान नहीं पाता है और दुःख के स्वरूप को भी नहीं जान पाता है। सभी प्राणियों को दुःख देनेवाले अतः हर प्रकार से त्यागने योग्य इस अभागे संसार में कौन प्रवेश करे! वे मन्दबुद्धि वाले जन्म के समय तो नष्ट होते ही हैं, पुनः मृत्यु के समय भी मारे जाते हैं; क्योंकि वे मुक्ति के लिए जीवन भर उपाय नहीं करते।

न किञ्चिदपि कर्मात्र निष्फलं विद्यते मुने।
इच्छेत् पुनः प्रवेशाय भवेन्मुक्तोऽपि वध्यते।।52।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! इस संसार में कोई कर्म निष्फल नहीं होता। तब यदि पुनः इस संसार में प्रवेश की इच्छा की जाती है तो मुक्त भी पुनर्जन्म के बन्धन से बँध जाते हैं।

अतो न कर्म कर्त्तव्यं फलार्थित्वेन शूरिभिः।
न चेत् पतन्ति संसारे दुःखावर्ते विमोहिताः।।53।।
यदि कर्तुः फलं तत्तदनपेक्ष्यार्चनादिकम्।
ईश्वरोऽपि समुद्धर्त्तुं शक्तो भवति नान्यथा।।54।।

अतः फल के प्रयोजन से विद्वानों के द्वारा कोई कर्म नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा, वह इस संसार में दुःख के भँवर में विमूढ़ होकर गिर पड़ते हैं। यदि उन अर्चना आदि से कर्ता को मिलनेवाले फल की अपेक्षा न हो, तो कर्म करना चाहिए। उसे ईश्वर ही उद्धार कर सकते हैं; अन्य प्रकार से उनका उद्धार नहीं हो सकता।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये प्राणायामविधिर्नाम विंशोऽध्यायः।।20।।

अथ एकविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथातोहं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
यदशेषेण दुःखघ्नं तच्छृणुष्व तपोनिधे।।1।।
तत्प्राप्तिसाधनेनैव कर्मापीत्यपि चिन्त्यते।
कर्मणामीदृशं यस्माद् विहितं सुकृतं तथा।।2।।

अगस्त्य बोले– अब मैं अत्यन्त गूढ रहस्य बतलाता हूँ, जिससे सभी दुःख मिट जाते हैं। हे तपस्वी! इसे सुनें। उस परमात्मा की प्राप्ति के साधन के रूप में कर्म भी है, यह चिन्तन किया गया है; कर्म का स्वरूप ही ऐसा है कि यह विहित और अविहित रूप से दो प्रकार के होते हैं।

रहस्यमेतत् तन्नास्ति तदस्मन्मुक्तये कथम्।
यो यत्र वाधिकारत्वे चोदितस्तादृशो नहि।।3।।

रहस्य यह है कि कर्म का सत्ता ही नहीं है, तब वह कैसे हमारी मुक्ति के लिए उपयोगी होगा। जो कर्म जिस विनियोग के लिए कहा गया है, वह उसके अनुरूप नहीं है।

जगत्यपि धनं न्यायैरागतं क्व च मे वद।
ऋत्विजः कर्मतत्त्वज्ञाः यजमानहितैषिणः।।4।।

अब बतलाएँ कि इस संसार में कर्म के लिए न्यायोपार्जितत धन कहाँ से मिलेगा? यज्ञ में कर्म के मर्मज्ञ ऋत्विक् क्या यजमान का उपकार करते हैं?

क्व च तिष्ठन्ति मन्त्राश्च नियम्याध्यापिता पुनः।
अधीतानि यमेनापि सम्यग् वा पाठनं कुतः।।5।।
कथमेवंविधं कर्मफलं साधकमिष्यते।

फिर नियमपूर्वक पढ़ाये गये मन्त्र कहाँ है? कोई यम का पालन करते हुए पढ़ना भी चाहे, तो सम्यक् रूप से किससे पढ़े? तब इस प्रकार किये गये कर्म भला कैसे इष्टसाधक हो सकेगा?

यदर्थसाधकत्वेन यच्च यस्य प्रचोदितम्।।6।।
तत्रैवोक्तं प्रयत्नेन व्यङ्गं चेत् तदसाधनम्।[1]

जो कर्म जिस प्रयोजन के लिए साधन के रूप में कहा गया है, वही कर्म अपने अंग के लोप हो जाने पर असाधन हो जाता है।

(लोक में नियम है- **एकदेशविकृतमनन्यवत्।** अर्थात् यदि कुत्ते की पूँछ कटी हो, तब भी उसे कुत्ता ही कहेंगे, उसकी संज्ञा नहीं बदलती है, किन्तु कर्म के साथ यह विडम्बना है कि इसका एक अंग भी छुट जाये, तो वह साधन नहीं असाधन हो जाता है।)

कर्तुं कारयितुं वापि ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः।।7।।
न शक्नोतीति[1] मे बुद्धिर्विहितं विधिवत् स्वयम्।
को वान्यो विधिवत् कर्म कृत्वेष्टं साधयेत् फलम्[2]।।8।।

सभी अंगों के साथ विधिवत् कर्म करने और कराने में तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी समर्थ नहीं होंगे, यह मेरी बुद्धि कहती है। तब दूसरा कौन है, जो स्वयं विधिवत् कर्म कर अभीष्ट फल पा सकेगा?

कर्म कर्ता कृतिश्चैव साधनानि बहून्यपि।
एतत्साध्यं फलं तेन सुखी भवति देहवान्।।9।।

कर्ता, कर्म, कृति और अनेक प्रकार के साधनों के द्वारा मनुष्य को कर्मफल मिलता है, जिससे वह सुखी होता है।

तेषां न्यूनातिरिक्ताभ्यां अतथा चोदिता सती।
विपरीतफलस्यैव[3] दात्री स्यात् कृतिरञ्जसा।।10।।

1. घ. न शक्तोस्तीति। 2. घ. पुनः।

कर्मों में न्यूनता और अधिकता हो जाने के कारण शास्त्रानुसार सम्पन्न न होने से कर्म शीघ्र ही विपरीत फल देने लगता है।

निर्मलीकरणं कर्म वदन्ति ह्यपि चेतसः।
तत्फलानर्थिभिः सम्यग्विहितं तदनुष्ठितम्।।11।।

कर्म के फल की प्राप्ति की कामना न रखनेवाले साधकों द्वारा भलीभाँति जो कर्म किया जाता है, वह चित्त को शुद्ध करने की प्रक्रिया है, ऐसा लोग कहते हैं।

योगाभ्यासदशायाञ्च तन्नित्यं कर्म नित्यशः।
नैमित्तिकनिमित्तेषु काम्यं नैव समाचरेत्।।12।।

योगाभ्यास करते समय नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिए और नैमित्तिक के लिए किये जानेवाले कर्म के साथ काम्य कर्म नहीं करना चाहिए।

सम्यगुत्पन्नवैराग्यो यदा भवति देहवान्।
तदा सर्वं परित्यज्य कर्म मोक्षाय कल्पते।।14।।

भलीभाँति वैराग्य हो जाने पर प्राणी जब स्वयं को देहधारी समझता है, अर्थात् आत्मा से भिन्न शरीर का अस्तित्व मानने लगता है, तब वह सभी कर्मों का त्यागकर मोक्ष की इच्छा करने लगता है।

योगाभ्यासरतः शान्तो निर्द्धूताशेषकल्मषः।
ब्रह्मविद् ब्रह्म भवति परिव्राडेव नेतरः।।15।।
सर्वात्मना परित्यागो नास्त्यन्येषामतस्ततः।

योगाभ्यास में लीन होकर सभी पापों को जलाकर शान्तचित्त ब्रह्मज्ञानी परिव्राजक ब्रह्म ही हो जाता है, अन्य नहीं; क्योंकि अन्य लोग हर प्रकार से त्याग नहीं कर पाते हैं, इसलिए वे ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

ब्रह्मचारिगृहारण्यवासिनां योगिनामपि।।16।।
सर्वात्मनामृतत्वेन ब्रह्मीभावो यतः परम्।[1]

गृहस्थों और वानप्रस्थियों में तथा योगियों में जो ब्रह्मचारी होते हैं, वे सभी प्रकार से अमरत्व से पूर्ण होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

परित्यक्तात्मदेहादिपत्नीपुत्रादिमानितः ।।17।।
स्वं देहमपि योऽमेध्यं विण्मूत्रमपि चिन्तयेत्।
यतिरुत्पन्नवैराग्यो ब्रह्मेति ब्रह्मवित्तमः।।18।।

1. घ. यतो भवेत्।2. घ. एक श्लोक अनुपलब्ध।

ऐसे व्यक्ति, जो शरीर, पत्नी, पुत्र आदि का अभिमान छोड़ चुके हैं, उनमें से अनन्य ब्रह्मचारी शरीर को अपवित्र मानते हुए उसे विष्ठा और मूत्र के समान सोचें। तब वैराग्य उत्पन्न होने के कारण जो यति हो जाते हैं, वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

[2]कर्मावकाशलेशोऽपि मोक्षे नास्ति ततो मुने।
परमार्थविदो नूनं विरक्तस्य सुचेतसः।।

परमार्थ को जाननेवाले, विरक्त एवं निर्मल चित्तवाले मनुष्यों के लिए मोक्षमार्ग में कर्म के लिए थोड़ा सा भी स्थान नहीं है।

अमेध्यं दृश्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
कश्चित्किमर्थं यत्किञ्चित् कुर्याद् भ्रान्त इवात्मवान्।।19।।

यह स्थावर एवं जंगम रूप सम्पूर्ण जगत् ही अपवित्र दिखाई पड़ता है। कोई प्राणी इस जगत् में जो कुछ भी है, उसका प्रयोजन जानकर तथा आत्मा का ज्ञान पाकर भी कोई भ्रमित व्यक्ति के समान कर्म करता है।

को वामेध्यं परित्यक्तं पुनरङ्गे विनिक्षिपेत्।
विष्ठाशनः शूकरोऽपि न स्वविष्ठाशनो भवेत्।।20।।

कौन ऐसा प्राणी है, जो अपवित्र वस्तु का परित्याग कर उसे पुनः अपने शरीर पर डाले! विष्ठा खानेवाला सूअर भी अपनी विष्ठा तो नहीं खाता है!

स्वेनासत्त्वेन मुक्तस्य स चिन्तां किं करिष्यति।
जगत्यभ्युदयार्थं यद् भवेत् कर्म तथाविधि।।21।।
एतत् तत्त्वविदो न्यूनं न भ्रान्तस्य कदाचन।

जो अपने असत्त्व रूप शरीर से मुक्त हो चुका है, उसे चिन्ता किस बात की होगी? किन्तु इस संसार में अपनी उन्नति के लिए जो कर्म किये जाते हैं, वे तत्त्वज्ञानियों के लिए न्यून होते हैं न कि भ्रान्त लोगों के लिए।

इन्द्रियाणि शरीरं च वर्तन्ते मनसा समम्।।22।।
विषयेष्वेव तोयानि स्वतो न्यूनस्थलेष्विव।
दुःखमुत्पादयन्त्येव तदानीमायतावपि।।23।।

इन्द्रियाँ तथा शरीर मन के साथ संयुक्त होकर नीचे विषयों की ओर उसी प्रकार गिरने लगते हैं, जैसे जल हमेशा नीचे की ओर बहता है। ऐसी स्थिति में स्फीत स्थल में भी वे इन्द्रियाँ तथा शरीर दुःख ही उत्पन्न करते हैं।

1. घ. दुःखकृद्।

यो यस्य पापकृद्[1] वैरी स तस्येति स्थितिर्भवेत्।
तदन्ते वैरिणं ज्ञात्वा समीपेऽप्यपकारिणम्।।24।।
स तेनैव हतो भूत्वा प्राणानपि विमुञ्चति।

जो शत्रु है और पाप देनेवाला है, उसे लोग अपना (हित) बना लेते हैं, यही विडम्बना की स्थिति है। किन्तु देहान्त के समय में प्राणी समीप में स्थित अपकार करनेवाले शत्रु को जानकर भी उसी के द्वारा घायल होकर अपना प्राण भी त्याग कर देता है।

अतो यत्नेन देहादीन् कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।।25।।
शोधयेद् विधिवत् सम्यक् न च तैरभिभूयते।

अतः यत्नपूर्वक देह आदि को कृच्छ्र एवं चान्द्रायण व्रत आदि के द्वारा विधानपूर्वक सम्यक् प्रकार से शुद्ध करें, इससे वह साधक इन्द्रियों के द्वारा पराजित नहीं होता है।

यदि तैरभिभूतः स्यात् स्वस्यापि प्रियमप्रियम्।।26।।
न वेत्ति विषयाविष्टो नरकं प्रतिपद्यते।

यदि वह शरीरादि से पराजित हो जाता है, तब अपन प्रिय और अप्रिय भी नहीं जान पाता है और विषय में लिप्त होकर नरक का भागी बनता है।

ततः कर्मविपाकेन तरुगुल्मलतादिकम्।।27।।
सम्प्राप्य कृमिकीटादिजन्तुत्वं प्रतिपद्यते।[1]
ग्रामारण्यपशुत्वं च यच्च यावच्चराचरम्।।28।।
समुपेत्य विनष्टात्मा मानुष्यं प्रतिपद्यते।[2]

ऐसा होने पर कर्म के परिणामस्वरूप वृक्ष, झुरमुट, लता आदि के रूप में तथा कीड़े-मकोड़े के रूप में जन्तु का शरीर प्राप्त करता है। वह पालतू और जंगली जानवर के रूप जन्म लेकर जितने स्थावर और जंगम प्राणी हैं, उसके रूप में जन्म लेते हुए आत्मज्ञान के नष्ट हो जाने पर मनुष्य की योनि में जन्म लेते हैं।

ततः पुराकृतं स्वस्य दुःखदं कर्म विस्मरन्।।29।।
करोत्यनिष्टं सततं हितं नैव समाचरेत्।
ततोऽयन्नारकी भूत्वा पुनरेवं प्रपद्यते।।30।।

1. घ. में अनुपलब्ध। 2. घ. मनुष्यत्वं प्रपद्यते।

भूयो भूयोऽप्येवमेव चक्रवत्परिवर्तते।

तब पूर्वजन्म में अपने किये गये दुःखप्रद कर्मों को भूलते हुए हमेशा गलती ही करता रहता है और कल्याणकारी कार्य नहीं करता है। तब वह जीव नरक प्राप्त कर फिर इसी प्रकार उत्पन्न होता है। बार बार इसी प्रकार चक्र के समान परिवर्तन होता रहता है।

विहितं च निषिद्धं च सः कर्म विदधीत वै।।31।।
संसारान्न निवर्तन्ते कदाचिदपि दुःखितः।

अतः शास्त्र में जिस कर्मकाण्ड का विधान किया गया है अथवा जिसे निषिद्ध माना गया है, उन्हें जो करते हैं, वे दुःखी इस संसार से छुटकारा नहीं पाते हैं।

न ज्ञानव्यतिरेकेण मुक्तये साधनान्तरम्।।32।।
सुतीक्ष्ण विद्यते तत्त्वज्ञाननिष्ठो भवानघ।
तद्योगेनैव भवति योगोऽप्यभ्यासपूर्वकः।।33।।
अभ्यासोऽपि यमाद्यैश्च जायते नान्यथा मुने।

अतः हे निष्पाप सुतीक्ष्ण! ज्ञान को छोड़कर मुक्ति का दूसरा साधन कुछ भी नहीं है, अतः तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करो। यह ज्ञान योग से होगा तथा योग भी अभ्यास करने से होगा। यह योगाभ्यास भी यम आदि का पालन करने से होगा अन्य विधि से नहीं।

अधीत्य वेदशास्त्राणि[1] विरक्तैः सात्त्विकैश्च तैः।।34।।
यमादयोऽनुष्ठीयन्ते त्यक्तदेहाभिमानिभिः।

वेद और शास्त्रों का अध्ययन कर विरक्त और सात्त्विक प्रवृत्ति के लोगों द्वारा अपने शरीर का अभिमान छोड़ देने पर यमादि का पालन किया जाता है।

स्वदेहाभिमानोऽपि तेषामेव न विद्यते।35।।
नित्यानित्यार्थतत्त्वज्ञाः शान्ताश्च यतयोऽपि ये।

यह नित्य है और यह अनित्य है, इसका जिन्हें ज्ञान हो गया है, ऐसे शान्त यती को ही अपने शरीर का अभिमान नहीं रहता है।

मुक्तये न परो मार्गो मुक्तये न परन्तपः।।36।।
मुक्तये न परं ध्यानं ततोन्यन्नास्ति किञ्चन।

1. घ. वेदशास्त्रार्थं।

मुक्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं, दूसरा कोई तप नहीं, दूसरा कोई ध्यान नहीं। इस ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यदि त्वमुपपद्यैव देहादौ ममतामपि।।37।।
त्यज कर्माखिलं सम्यक् यदि मुक्तिमपेक्षसे।

इस प्रकार, यदि मोक्ष चाहते हो, तो ज्ञान प्राप्त कर शरीर इन्द्रिय आदि के प्रति ममता का त्याग करो और सभी कर्मों का भी त्याग करो।

जानीहि सम्यगात्मानमन्तरे त्वं निरन्तरम्।।38।।
मूलाधारे च हृदये द्वादशान्ते स्थितो हि सः।
यावदन्तर्बहिः सर्वं व्याप्य रामः प्रकाशते।।39।।
देहादिषु गतेष्वेकं स्वयमेवावशिष्यते।
ततस्त्वतः परं कञ्चिद् विद्यते न तपोधन।।40।।

आत्मा को भलीभाँति जानो और हमेशा उसे अपने अन्तःकरण में स्थित जानो। वह परमात्मा मूलाधार, हृदय और द्वादश चक्र के अन्तस् में स्थित है। भीतर बाहर जो कुछ भी है, उनमें श्रीराम व्याप्त होकर उन्हें प्रकाशित करते हैं। शरीर आदि के नष्ट हो जाने पर भी एकमात्र श्रीराम शेष रह जाते हैं। हे तपोधन सुतीक्ष्ण! इसलिए इसके ऊपर कुछ भी नहीं है। श्रीराम परम सत्ता हैं।

एवं च सति दुःखञ्च संसारोऽप्यस्थितो मुने।
यतित्वव्यतिरेकेण यो यतेत स मूढधीः।।41।।
दुःखात्यन्तनिवृत्तौ च विना वा ब्रह्मविद्यया।
सर्वात्मना हि सर्वेभ्यो विषयेभ्यो निवर्तनम्।।42।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! इस प्रकार श्रीराम को परम सत्ता के रूप में जान लेने पर दुःखमय यह संसार अस्तित्वहीन हो जायेगा। यति धर्म के विना जो भी इसके लिए यत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं। अथवा, ब्रह्मविद्या के बिना दुःखों की पूर्ण निवृत्ति के लिए तथा हर प्रकार से सभी विषयों से छुटकारा पाने के लिए भी जो यत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं।

ब्रह्मविद्यासमायुक्तं यतित्वं मुक्तिसाधनम्।
तत्त्वतो न परं किञ्चित् साधनं मुक्तयेऽस्ति हि।।43।।

ब्रह्मविद्या से युक्त जो यति धर्म है, वह मुक्ति का साधन है। वस्तुतः इससे आगे ऐसा कोई साधन नहीं है, जो मोक्ष के लिए हो।

अतस्तदयनं सर्वं मङ्गलं सर्वसिद्धिदम्।
यथा भागीरथी गङ्गा सागरेण समं गता।।44।।
पुनाति पतितान् ब्रह्मविद्यापि भुवनत्रयम्।

इसलिए वह समस्त मंगलमय तथा सारी सिद्धि देनेवाला मार्ग है। जैसे सगर के वंशज भगीरथ द्वारा लायी गयी गंगा पतितपावनी है, उसी प्रकार, ब्रह्म विद्या तीनो लोकों को पवित्र करती है।

यतिदर्शनमात्रेण योगाभ्यासपरायण।।45।।
सम्यग् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ[1] निर्मली कुरुते जगत्।

हे योगाभ्यास में लीन सुतीक्ष्ण! हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ! यतियों के दर्शनमात्र से यह संसार पवित्र हो जाता है।

प्रायश्चित्तं पुनात्याशु यथा द्वादशवार्षिकम्।।46।।
विधिवत् स्वीकृतं सम्यग् यतित्वं च तथा सताम्।
[2]अतः सर्वात्मना ब्रह्मकैवल्यं नित्यमभ्यसेत्।।47।।

जिस प्रकार, बारह वर्ष तक का प्रायश्चित्त शीघ्र पवित्र करता है, उसी प्रकार सज्जनों द्वारा आचरित विधानपूर्वक, शास्त्रानुमोदित सम्यक् यति धर्म पवित्र करता है। अतः सभी प्रकार से ब्रह्म-कैवल्य का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये ब्रह्मविद्यानिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच।

योगो नाम किमेतन्मे ब्रूहि योगविदां वर।
चेतसो विजयः केनोपायेन स्यान्मुनीश्वर।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे योगिराज! अगस्त्य! योग क्या है? यह मुझे बतलाएँ और मन पर विजय कैसे मिलेगा?

---

1. घ. ब्रह्मविदश्चैव।2. घ. में अनुपलब्ध।3. घ. स्यात्तथा ततः।

अगस्त्य उवाच।

समीरणाः शरीरान्तर्निरुद्धा येन यत्नतः[3]।
मनोप्येवं निरुद्धः स्यात् तदात्मनि समीहते।।2।।

अगस्त्य बोले- 'जिस प्रकार के प्रयास से वायु शरीर के भीतर रोक लिए जाते हैं, उसी प्रयत्न से मन भी आत्मा में समाहित हो जाता है।'

ज्ञानानन्दरसास्वादस्तस्मान्नैव निवर्त्तते।
अनायासेन मनसो निश्चलत्वमुपेक्षसे।।3।।
तदापानं समुत्कृष्य प्राणेनानीय योज्यताम्।
प्राणापानौ समौ कृत्वा[1] चित्तमप्यात्मनिस्थितम्।।4।।
सुखमास्वादयत्येव द्वादशार्णाब्जनिःसृतम्।
तदास्वादं परः शश्वत् कदाचिदपि न त्यजेत्।।5।।

ज्ञानानन्द के रस का स्वाद पा लेने पर मन आत्मा से फिर लौटता नहीं। तब अनायास ही मन की निश्चलता की अपेक्षा होने लगती है। इसके बाद साधक प्राणवायु को खींचकर अपान वायु को भी खींच लेता है और अन्यत्र मन को नहीं लगाता है। तब प्राण और अपान वायु को समान कर चित्त को आत्मलीन कर द्वादशदल कमल से निःसृत अमृत के स्वाद को चख लेता है। इस परम स्वाद को एक बार पा लेने पर उसे कभी नहीं छोड़ता है।

आदावेतानि जानीहि शरीरोत्पत्तिकारणम्।
उत्पत्तिमथ संस्थानं क्रमं कर्त्तारमात्मनः।।6।।

सबसे पहले अपनी शरीरोत्पत्ति के ये कारण जानो। उत्पत्ति, स्थिति, उसका क्रम और कर्त्ता को जानो।

अनादिरेव संसारोऽदृष्टमात्रं तु कारणम्।
विधिस्तदनुरूपेण विद्यत्ते निग्रहान् किल।।7।।
स्वस्यादृष्टैश्च बहुधा नानारूपेण भेदिताः।
सर्वेषामपि संख्यातं तेषां नास्ति तपोनिधे।।8।।
आत्मानो बहवोऽनन्ताः श्रुतिरित्येवमब्रवीत्।

अपने अपने भाग्य के फल के कारण अनेक प्रकार के अनेक रूपों में पृथक् किए गये जीव होते हैं। आत्मा के अनन्त रूप हैं- ऐसा श्रुति वचन है, इसलिए सभी जीवों की संख्या निश्चित नहीं है।

---

1. घ. युक्तौ।

संसारब्धेरनादित्वात् सम्यज्ज्ञानोदयावधि।।9।।
एतावदप्यहोऽनन्तदुःखमेवानुभूयते ।

अनादि होने के कारण इस संसार रूपी दुःख को भी तबतक जीव अनुभव करता है, जबतक उसमें ज्ञान का उदय नहीं हो जाता।

उद्भिजान्यण्डजान्याहुः स्वेदजानि विपश्चितः।।10।।
जरायुजानि बहुधा चतुर्द्धा भेदितान्यपि।

उद्भिज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज, ये चार प्रकारों में बँटे जीव अनेक प्रकार से उत्पन्न होते हैं।

सम्यङ्महीमधिष्ठायोद्भिज्ज्ञायत इत्यथ।।11।।
पाञ्चभौतिकरूपाणि तृणादीनि तु तान्यथ।
पत्रपुष्पफलस्कन्धशाखाभेदेन बोधत।।12।।

अच्छी तरह पृथ्वी में रहने वाले तथा उसे भेदकर उगनेवाले पाँच भूतों के स्वरूप तृण आदि भी जो हैं, वे भी शरीर रूप हैं, जिन्हें पत्र, पुष्प, फल, तना और डाल के रूप में भिन्नता लिए जानो।

अण्डजान्यपि गोधादिरूपेणैषामवस्थितिः।
सुप्रसिद्धे च चान्यानि स्वेदजानि तपोनिधे।।13।।
यूकाकीटादिरूपाणि प्रक्षीयन्ते क्षणे क्षणे।

छिपकिली आदि के रूप में जिनकी अवस्थिति होती है, वे अण्डज हैं तथा दूसरे स्वेद से उत्पन्न स्वेदज जूँ, कीड़े आदि रूप में क्षण क्षण नष्ट होते हैं। ये दोनों रूप प्रसिद्ध हैं।

जरायुजान्यथोत्पत्तिं प्राप्नुवन्ति प्रभावतः।।14।।
स्वस्यादृष्टस्य पक्वस्य भुक्तिप्रक्षीणस्य चात्मनः।
स्त्रीपुंसोर्ग्राम्यधर्मेण जायेते शुक्रशोणिते।।15।।
तदुक्तरसरूपेण देहमस्य[1] प्रजायते।

अब जरायुजों के विषय में कहता हूँ कि अपने अदृष्ट का फल जब पक जाता है और भोग शेष हो जाता है, तब उसके प्रभाव से जन्म लेते हैं। स्त्री और पुरुष के संभोग से शुक्र और शोणित उत्पन्न होते हैं, उस कहे गये रस के रूप में इसका शरीर उत्पन्न होता है।

1. घ. तत्त्वमस्य।2. घ. वाय्वग्निजलदेहजः।

यथाग्निरनिलं प्राप्य स्वाकारमधिगच्छति।।16।।
एवं शुक्रमयो जीवः शोणितं स्वस्य कर्मणा।
सम्प्राप्य योषितः सम्यग् वासनोभयदेहजः[2]।।17।।
योषातः पुरुषोत्पन्नं मलाभ्यामपि तत्त्ववान्।

जैसे अग्नि हवा पाकर अपना स्वरूप प्राप्त करता है, उसी प्रकार शुक्रमय जीव अपने कर्म के प्रभाव से योनि से निःसृत शोणित को पाकर वासना के कारण स्त्री और पुरुष के शरीर से उत्पन्न होकर पुष्ट होने के कारण पुरुष से उत्पन्न दोनों मलों (शुक्र और शोणित) से भी तत्त्व युक्त रहता है।

सोऽयं प्रविश्य गर्भान्तर्मरुदग्न्यद्भिरत्र तु।।18।।
क्लेद्यते क्वाथ्यते सम्यक् शुक्रशोणितवृद्धितः।
तत्सामान्येन जायन्ते नरनारीनपुंसकाः।।19।।

शुक्र और शोणित की वृद्धि से उत्पन्न होकर यह गर्भ के भीतर प्रविष्ट होकर वायु, अग्नि और जल के द्वारा भींगता है, उबलता है। इस तरह सामान्य रूप से नर, नारी और नपुंसक जन्म लेते हैं।

सोऽयमेवंविधाकारो मातुर्गर्भे[1] प्रवर्तते।
प्रतिक्षणं प्रतिदिनं प्रतिमासं तथाविधः।।20।।
घनीभूतस्तदत्रैव मातुर्भुक्तरसात्मवान्।
अङ्गुष्ठवदथायामी जलबुद्बुदवद् दिने।।21।।
द्वितीयेऽप्येवमेवायं वर्द्धते प्रतिवासरे।

इस प्रकार इस प्रकार के आकार का यह जीव माता के गर्भ में प्रतिक्षण, प्रतिदिन और प्रतिमास लगातार बढ़ता रहता है तथा माता के द्वारा खाये गये रसों से स्वयं सम्पुष्ट होता हुआ यही गर्भ में ठोस होकर अँगूठे के आकार का जल के बुलबुले के समान दिनानुदिन बढ़ता हुआ दूसरे मास में भी यह उसी प्रकार प्रतिदिन बढ़ता है।

अवाङ्मुखोऽप्यथावृत्ता नाडी काचिद् ऋजुर्भवेत्।।22।।
तत्पक्षोभयसम्बन्धे द्वे अन्या सप्तनाडयः।
तासु या प्रथमं स्वस्याः सुषुम्णेति च गीयते।।23।।

---

1. घ. मर्त्यो गर्भे।

वामाङ्गेडा पिङ्गला स्याद् दक्षिणस्था तथोत्तरा।
गान्धारी हस्तजिह्वा च सपुष्पालम्बुषास्तथा।।24।।

नीचे की ओर मुख करके वह जीव रहता है। इसके बाद चारों ओर लिपटी हुई नाडी सीधी हो जाती है। वह दो भागों में बँट जाती है तथा अन्य सात नाड़ियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इन नाडियों में पहली अपनी नाड़ी है, जिसे सुषुम्णा कहते हैं। वाम अंग में ईडा, दाहिने अंग में पिंगला, ऊपर में गांधारी, हस्तजिह्वा, सपुष्पा एवं अलम्बुषा नाडियाँ होती है।

यशस्विनी शङ्खिनी च हूहूरिति दश क्रमात्।
या तासु मध्यमा तस्याः सुषुम्णायाः पृथक् पृथक्।।25।।
प्लवन्ति पञ्चपर्वाणि तेभ्यो लक्षत्रयं पुनः।
लक्षार्द्धञ्च शिरा जाताः शरीरं व्याप्नुवन्ति च[1]।।26।।

इसके अतिरिक्त यशस्विनी, शंखिनी और हूहू ये मिलकर क्रमशः दस नाड़ियाँ हैं। उनमें जो मध्यमा नामक नाड़ी उसकी स्थिति सुषुम्णा से पृथक् होती है। इनमें पाँच गाँठें तैरती रहती हैं, जिनसे तीन लाख नाड़ियाँ उत्पन्न होती हैं और पचास हजार शिराएँ उत्पन्न होकर शरीर में फैल जाती हैं।

देहेस्मिन् दश विज्ञेया जलस्याञ्जलयो मुने[2]।।
रसस्य नव षट्कैव पुरीषस्य प्रकीर्तिताः।।27।।
रक्तस्याञ्जलयोऽप्यष्टौ षट् श्लेष्माण उदाहृताः।
पित्तस्यापि तथा पञ्च मूत्रस्यापि शरीरके।।28।।
चत्वारोऽत्र वसायाश्च त्रयो द्वे मेदसस्तथा।
एकोऽर्द्ध चापि मज्ञायाः रेतसस्तावदेव हि।।29।।
श्लेष्मौजसोप्येमेवमेभिर्देहो निबध्यते।

इस शरीर में दस जल के गढ़े होते हैं। रस के नौ तथा विष्ठा के छह गढ़े होते हैं। रक्त के आठ गढ़े होते हैं, जिनमें छह छोटे होते हैं। पित्त के पाँच, मूत्र के चार, वसा के तीन और मेद के दो गढे होते हैं। मज्ञा का एक और आधा गढ़े होते हैं और रेत के भी उतने ही होते हैं। श्लेष्मा और ओजस् के भी इतने ही होते हैं। इन सबसे यह शरीर बँधा हुआ रहता है।

---

1. घ. प्राप्नुवन्ति।2. घ. जलस्य मुनिपुंगव।

दिने दिनेऽप्येवमेव वर्द्धतेऽङ्गं तपोनिधे।।30।।
पूर्वमाभिर्भवन्त्येव शिरःपादौ करावपि।
आधिः स्यान्महती तस्य षडङ्गेन्तरेष्वेव तु।।31।।
वागक्षिनासिकाः कर्णत्वक्कपोलं च हनुद्वयम्।।
चिबुकं दन्तपंक्तिश्च जिह्वा चैवोपजिह्विका।।32।।
शिरःकेशास्तथा कण्ठं स्कन्धं कूर्परपाणयः।
नखांश्चाङ्गुलयः कक्ष उरः पार्श्वद्वयं तथा।।33।।
पृष्ठमप्युदरं नाभिः कटिस्फिच्च[1] गुदादिकम्।।
ऊरू च जानुनी जंघे पादावङ्गुलयस्तथा।।34।।
रोमाण्येतच्छरीरं तच्चर्मणाच्छादितं मुने।

हे तपोनिधि सुतीक्ष्ण! इस प्रकार क्रमशः अंग बढ़ते हैं। सबसे पहले शिर, पैर और दोनों हाथ प्रकट होते हैं। इस प्रक्रिया छह अंगों के भीतर अत्यधिक कष्ट होता है। अंगों में वाणी, आँख, नासिका, कान, त्वचा, कपोल, ठुढी, चिबुक, दन्तपंक्ति, जिह्वा, लबलबी, शिर के केश, कण्ठ, कन्धा, केहुनी, हाथ, नाखून, अंगुलियाँ, दोनों काँख, छाती, दोनों पंजर, पीठ, उदर, नाभि, कमर, कूल्हा, गुदा आदि, दोनों घुटने, दोनों जाँघें, पैरों की अंगुलियाँ और रोम, इन अवयवों से शरीर बनता है और चर्म से ढँका रहता है।

बहिरन्तश्चरन्तोऽमी वायवश्चालयन्ति च।।35।।
देशाद् देशान्तरं देहे सप्तधातूनविद्रुतम्।

इस शरीर को बाहर भीतर चलते हुए वायु चलाते हैं। यही वायु शरीर में तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक सातो धातुओं को भी चलाते हैं।

वायवः पंच देहस्थाः पृथगेव प्रकीर्तिताः।।37।।
प्राणाख्यो हृदये वायुरपानाख्यो गुदे स्थितः।
समानाख्योऽपि नाभौ स्यादुदानः कण्ठदेशतः।।38।।
आपादमस्तकं व्यानः समस्तं व्याप्य[2] तिष्ठति।

शरीर में स्थित पाँच वायु अलग अलग ही अवस्थित रहते हैं। 'प्राण' नामक वायु हृदय में, 'अपान' नामक गुदा में 'समान' नामक नाभि में और 'उदान' नामक कण्ठस्थल में रहते हैं। 'व्यान' नामक वायु सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

---

1. घ. स्फिकोपस्थ।2. घ. समभिव्याप्य।3. घ. कृकरो।

नागः कूर्मोऽथ कृकलो[3] देवदत्तो धनञ्जयः।।39।।
वायवो दश देहेऽस्मिन् सप्तधातुषु संस्थिताः।
सप्तैवान्येषु दोषेषु स्वेदक्लेदान्तगामिनः।।40।।

इसके अतिरिक्त सात धातुओं में नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये पाँच वायु हैं। ये दश वायु शरीर में होते हैं। दूसरे दोष उत्पन्न करनेवाले सात वायु हैं, जो पसीना और मूत्र के अंग में रहते हैं।

एवं शरीरमासाद्य प्रसूतिसमये भृशम्।
स्वमातरं व्यथयन्ननन्तमुदरे विनिवर्तते।41।।
नवमे दशमे मासि शरवन्निःसरेदपि।
पूयशोणितविण्मूत्रपरीताङ्गोऽथ सज्वरः।।42।।
योनेरवनिमासाद्य क्लेशातिशयमोहितः।
रोदित्युच्चैर्विषण्णः सन् विस्मरेच्च मनोगतम्।।43।।

इस प्रकार, शरीर प्राप्त कर जीव समय होने पर प्रसव के समय बार बार अपनी माता को अनन्त कष्ट देता हुआ उसके उदर में पहुँच जाता है और नवम या दशम मास तीर की तरह बाहर निकल जाता है, अर्थात् जन्म लेता है। मवाद, शोणित, विष्ठा और मूत्र से लिपटा तथा तप्त शरीर वाला शीघ्र ही योनिद्वार से ही जन्म लेकर अत्यधिक कष्ट से व्याकुल होकर जोर-जोर से रोता है और अपने मन की सभी स्मृतियों को वह भूल भी जाता है।

अमृतत्वमनावृत्तिलक्षणं साध्यमात्मनः।
तत्त्वज्ञानबहिर्भूतो भूयो भूयो विमोहितः।।44।।
आत्मानमपि विस्मृत्य बहिरेव प्रधावति।
क्षुत्पिपासातुरो नित्यं स्तनमेव किलेच्छति।।45।।

अपने अभीष्ट, अमृत नामक मोक्षस्वरूप ब्रह्म को वह जीव भूल जाता है और बाहर की ही ओर दौड़ पड़ता है; क्योंकि वह उस तत्वज्ञान से बहिर्भूत होकर बार बार मोहित हो जाता है। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह स्तन ही चाहता है।

दिने दिने वर्द्धमानः पक्षे मासि ऋतावपि।
तत्तत्कालोक्तविषयैः सम्यगाविष्कृतो भवेत्।।46।।
पितृभ्यो बन्धुभिः सम्यक् कायो नित्यं प्रमोदितः।

संवर्द्धितः शश्वदयं वर्षे वर्षे प्रयत्नतः।।47।।
यद्धितं स्वस्य सततं तदानीमायतावपि।
तत्सर्वं सम्परित्यज्य बहिरेव प्रवर्त्तते।।48।।

दिनानुदिन पक्ष मास और ऋतु के अनुसार बढ़ता हुआ वह उन उन समय के लिए उक्त विषयों के द्वारा भली भाँति प्रकट हो जाता है। वह शरीरधारी पिता, भाई के साथ प्रतिदिन प्रसन्न होता है। वह साल दर साल बढ़ता हुआ, उसका जो हमेशा कल्याणकारी है, उस परमधाम तथा परमेश्वर का साथ छोड़कर बाहर ही दौड़ता है।

यद्ययं सर्वमुत्सृज्य पश्येदात्मानमात्मनि।
एतावतेव संसारभवदुःखैर्विमुच्यते।।49।।

यदि वह जीव सब कुछ छोड़कर आत्मा में अपने को देखे, तो इससे ही वह संसार में जन्म लेने के दुःखों से मुक्त हो जाता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये शरीरोत्पत्तिर्नाम
द्वाविंशतितमोऽध्यायः।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसत्त्वैकलक्षणः ।
बहिरन्तः सुतीक्ष्णात्र स्वयमात्मा प्रकाशते।।1।।
अनाद्यसृष्टमेवात्र[1] कारणन्तत्र गोपते।
न्यूनं वाप्यतिरिक्तं वा सर्वत्रापि तपोनिधे।।2।।

हे सुतीक्ष्ण! अद्वैत, आनन्दस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, शुद्ध, सत्त्व, आ एकत्व इन छह लक्षणों वाली आत्मा स्वयं मनुष्य के भीतर और बाहर प्रकाशित रहती है। इस आत्मा का कारण अनादि और अदृष्ट है, जो चाहे कम मात्रा में हो या अधिक मात्रा में, सभी स्थितियों में आत्मा में प्रकाशित होती है।

आधिक्ये विषयैर्न्नित्यं बहिरेव प्रतीयते।
न्यूनेऽपि विषयात्यन्ता प्राप्या तस्माद् बहिर्भवेत्।।3।।

1. घ. अनाद्यसृष्टमेवात्र।

आत्मा के कारणों की अधिकता होने पर आत्मा विषयों के साथ बाह्य रूप में प्रतीत होती है और कारणों की न्यूनता होने पर विषयादि के साथ संयुक्त होकर उससे बाहर हो जाती है।

अतो जानीहि चात्मानमात्मन्येव निरन्तरम्।
आसक्तो विषयैर्न्नित्यं स्वस्यादृष्टोपकल्पितैः।।4।।
यत्र यद्यत् प्रपञ्चेऽस्मिन् जङ्गमाजङ्गमात्मके।
तत्र सर्वत्र चैतन्यं तिष्ठत्येवं निरन्तरम्।।5।।

इसलिए आत्मा को निरन्तर आत्मा में ही स्थित जानो, किन्तु अपने भाग्य के कारण जीव इस मिथ्या विषयों के साथ आसक्त हो जाता है। यह आसक्ति इस स्थावर और जंगम रूप संसार में जहाँ ज़हाँ होती है, उन सभी जगहों पर निरन्तर चैतन्य की सत्ता अवश्य होती है।

कार्यात्मना प्रपञ्चोऽयं चैतन्यं कारणात्मना।
अनुस्मृतं हि सर्वत्र भूतानाञ्चात्र भौतिके।।6।।
स्वयमेवात्र चैतन्यं तस्मादन्यन्न किञ्चन।

यह प्राणियों का यह भौतिक संसार कार्य रूप है और चैतन्य कारण रूप में सर्वत्र अनुभव किया जाता है। यहाँ स्वयं चैतन्य की सत्ता है और उससे परे दूसरे कुछ भी नहीं है।

परमात्मा च जीवात्मा ब्रह्म सच्च तदोमिति।।7।।
ज्ञानमानन्दमित्येत् सर्वं चैतन्यवाचकम्।
चैतन्यान्न परं किञ्चिद् दृश्यते सर्वजन्तुषु।।8।।

परमात्मा, जीवात्मा, ब्रह्म, सत्, ॐकार, ज्ञान, आनन्द- ये सबके सब चैतन्य के वाचक हैं। चैतन्य से परे सभी प्राणियों में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है।

प्रबुद्धस्याप्रमत्तस्य पृथिवीव घटादिषु।
अतः शुद्धं पृथिव्यादौ दृश्यते सर्वदेहिनाम्।।9।।
अदृष्टं कल्पयेद्यत्र स्वीयं स्वस्मिन् भवेदिह।

जो प्रबुद्ध हैं और अहंकारी या पागल नहीं हैं, उनकी दृष्टि में जिस प्रकार घट आदि में पृथिवी तत्त्व है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के अन्तस्तत्त्व पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों में दृष्टिगोचर होते हैं। अदृष्ट आत्मा की जहाँ कल्पना की जाती है, वहाँ स्वयं में अपनी आत्मा होती है।

प्रेमादिर्जायते लोके स्वस्मिन् वा स्वोपकारके।।10।।
न चेन्नैव समीचीनं यदन्यद् तद् विलोक्यते।
विलक्षणानि भूतानि तत्तत् कार्यं तथाविधम्।।11।।
स्वीये स्वस्मिन्निवाचारः कथं तत्परिशोधय।

इस संसार में स्वयं से अथवा अपना उपकार करनेवालों से प्रेम आदि हो जाते हैं। यदि न हो तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि दूसरे प्राणियों में भी ऐसा देखा जाता है। ये प्राणी भी अजीब हैं। उनके वे प्रत्येक कार्य उन्हीं के जैसे होते हैं। अपने से सम्बद्ध पदार्थों में अपने जैसा व्यवहार तथा उस व्यवहार का शोधन कैसे होगा?

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सर्वत्र प्रतिपादितम्।।12।।
सर्वात्मनापि चैतन्यं सर्वमात्मनि नापरम्।

वेद, स्मृति और पुराणों में सर्वत्र यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा के कारण चैतन्य है और वह चैतन्य आत्मा में स्थित है, वह भिन्न नहीं है।

सुतीक्ष्ण उवाच

कथं तत्त्वज्ञ सर्वेषां नैवं रूपेण दृश्यते।
कदाचिदपि कस्यापि यथैतच्चेदृशं वद।।13।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे तत्त्वज्ञानी अगस्त्य! इस प्रकार से सभी प्राणियों का चैतन्य क्यों नहीं दिखाई पड़ता है? कभी कभी किसी की दृष्टि में जिस प्रकार उपर्युक्त तथ्य प्रकट होते हैं, यह कहें।

अगस्त्य उवाच

लोके तत्तन्न जानाति यद्यदेवाभिमर्षितम्।
तत्तज्ज्ञानादृष्टहान्या तत्रैवान्तर्हितं तपः।।14।।

अगस्त्य बोले- इस संसार में जो विषय सम्पर्क में नहीं आते, उन विषयों को लोग नहीं जान पाते हैं। उन विषयों के सम्पर्क से ज्ञान हो जाने पर तथा भाग्य क्षीण हो जाने के कारण तप अर्थात् इन्द्रिय निग्रह आदि तिरोहित हो जाते हैं अर्थात् जीव विषयों में रम जाता है।।

बुभुत्सुः कर्मतत्त्वज्ञो दृष्टिमानप्रमादितः।
यदि पश्येत् परं ज्योतिरेकं सर्वत्र पश्यति।।15।।

कर्म के तत्त्वों को जाननेवाला भोग चाहनेवाला भी यदि सावधान होकर दृष्टि रखते हुए देखे तो उस एकमात्र परम ज्योति का दर्शन सर्वत्र करेगा।

यद्यनन्यमनाः पश्येद्दिदृक्षुर्विषयेष्वपि।
तच्चैतन्यं वरं पश्येन्नान्यत् किञ्चिदपि स्वयम्।।16।।

यदि चैतन्य का दर्शनाभिलाषी विना दूसरी ओर ध्यान दिए विषयों में देखे तो वही श्रेष्ठ चैतन्य स्वयं दिखाई पड़ेगा, दूसरा कुछ भी नहीं।

पापिष्ठाः क्रूरकर्माणस्ततो नित्यं बहिःकृताः।।
तत्तत्फलार्थिनः सर्वे कथं पश्यन्ति तद् वद।।17।।

जो पापी हैं, क्रूर कार्य करते हैं और इस कारण वे सदा बहिष्कृत रहते हैं वे अपने क्रूर कर्म का भी फल चाहते हैं, वे कैसे चैतन्य को देखते हैं, यह कहिए।

करस्थं नैव जानाति पुमान् विषयनिश्चलः।
अत्यन्तान्तर्हितं वेत्ति विजिज्ञासुरतथाविधः।।18।।

विषयों में सदा आसक्त लोग अपनी हथेली पर स्थित उस परम ज्योति को इस विधि से नहीं जान पाते और चैतन्य को जानने की इच्छा रखनेवाले उसे अत्यन्त प्रच्छन्न मान लेते हैं।

पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे।
प्रकाशते स्वयं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणः।।19।।

हे तपोनिधे! हर प्रकार से सबकुछ देखो कि हर जगह साक्षात् सत् चित् और आनन्द स्वरूप भगवान् प्रकाशित हैं।

ततोऽस्ति न परं किञ्चिद् वासत् तत् तद् विलक्षणम्।[1]
तत्तिरष्करिणीं प्राहुरविद्यां ज्ञानिनामपि।।20।।

उनसे परे कुछ भी नहीं है, असत् भी नहीं है, अपरिभाषित कोई तत्त्व नहीं है। उस भगवान् और प्राणी के बीच ज्ञानियों में भी एक पर्दा है, जिसे अविद्या कहते हैं।

1. घ. ततोऽस्मान्न परं किञ्चिद् बाह्यमेतद्धि लक्षणम्।

व्यामोहयति चेतांसि विषयेषु बलान्मुने।
दृष्टा स्यात् सर्वजन्तूनां सुखदुःखादिलक्षणा।[1]।21।।

वह अविद्या चित्त को मोह में डालकर विषयों में जबरदस्ती लगाती रहती है। सुख और दुःख इसी अविद्या का लक्षण है। यह अविद्या सभी प्राणियों में देखी जाती है।

अदृष्टान्तर्हिताः सर्वे नापि सर्वत्र संस्थितम्।
पश्यन्ति पुरतः साक्षाच्चैतन्यं सर्वगोचरम्।।22।।

इसी अदृष्ट अविद्या से ढके हुए सभी लोग सर्वत्र विद्यमान् और सामने में स्थित सर्वगोचर चैतन्य को नहीं देख पाते हैं।

शुद्धिमानप्रमत्तो यः कदाचिद् विषयैरपि।
नैव प्रलोभितः साक्षादात्मानं परमीक्षते।।23।।

जो शुद्ध आचरण करनेवाले और प्रमाद रहित हैं, उन्हें विषय कभी लुभा नहीं पाते और वे परम आत्मा को साक्षात् देखेते हैं।

एवंविधोऽपि यः कश्चित् सच्चिदानन्दलक्षणम्।
आत्मानं सर्वगं सम्यक् जानात्येव न संशयः।।24।।

इस प्रकार भी कोई व्यक्ति सत् चित् और आनन्द-स्वरूप सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

स जीवन्नेव मुक्तः स्याद्यद्येवं वायुमानयेत्।
बहिः सर्वं समानीय चैतन्यं स्वगतं पुनः।।25।।

यदि मनुष्य अपने अन्दर अवस्थित वायु को रेचक क्रिया के द्वारा बाहर लावे और चैतन्य को अपने अन्दर स्थापित करे तो इसी जीवन में मुक्त हो जाते हैं।

पूरकेनैव योगेन सर्वतः स्थितमन्ततः।
सम्यगाधाय चाधारे ध्यायेद् राममनन्यधीः।।26।।

प्राणायाम के अन्तर्गत पूरक के योग से (वायु को भीतर करते हुए) सर्वत्र स्थित श्रीराम को अन्ततः आधार-चक्र पर स्थापित कराकर एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए।

शरीरान्तर्गतं वायुं दशधा तत्र तत्र तु।
एकीकृत्य प्रयत्नेन कुम्भकेनैव योगतः[2]।।27।।

1. घ. दृष्टा स्यात् सुखदुःखादाविच्छाद्वेषादिलक्षणा।2. घ. यत्नतः।

तत्रैव सुदृढं बद्ध्वा पवनं सात्मना समम्।
स्थित्वैवं तु मुहूर्तार्द्धमुन्मीलय मुखं मुने।।28।।

शरीर के अन्दर में स्थित वायु को दश प्रकार से प्रयत्नपूर्वक कुम्भक द्वारा एकीकृत कर वहीं पर दृढ़ रूप से वायु को आत्मा के साथ बाँधकर इस तरह आधा मुहूर्त (24 मिनट) स्थिर रहें, तब मुख खोलें।

सुषुम्णायाः प्रयत्नेन सम्यक् सर्पमुखाकृतिः।
वायुना पूरकाभ्यासं कर्तव्यं साधयेत्ततः[1]।।29।।
ग्रन्थिभेदक्रमेणैव चैतन्यानि समीरणैः।

सुषुम्णा नाड़ी के प्रयत्न से सर्प के समान मुख की आकृति बनाकर वायु से पूरक का अभ्यास करना चाहिए। तब ग्रन्थियों एक एक कर वायु से भेदन कर विभिन्न स्तर के चैतन्यों की साधना करनी चाहिए।

उन्नीय पवनं यत्नात् कुर्यात् तन्मुखगोचरम्।।30।।
चिद्घनानन्दचैतन्यसमीरस्तन्मुखागतः[2]।
नयेदूर्ध्वं परन्त्वन्नं[3] पुनः पुनरपि स्वयम्।।31।।
अभ्यासातिशयेनैव भिनत्यूर्ध्वमनन्यधीः।

वायु को खींचकर यत्नपूर्वक उसे मुखेन्द्रिय में संचारित करावें। यह चित् स्वरूप और आनन्द स्वरूप चैतन्य रूप वायु तब मुख में आ जाती है। बार बार धकेलते हुए उसे स्वयं ऊपर की ओर ले जायें। अतिशय अभ्यास करने से एकाग्रचित्त साधक ऊपर मूर्द्धा का भेदन कर लेता है।

तत्परं परया[4] तत्र निःसृतान्तरगोचरः।।32।।
भूमौ वीरासनं बद्धमन्तरालं नयेदपि।

इसके बाद परा चक्र से निर्गत तथा बीच में स्थित पवन को वहाँ बीच में लावें। भूमि पर वीरासन में बैठकर यह योग करें।

पुनर्यदेवमेवायं द्वितीयमपि भेदयेत्।।33।।
तदन्तान्तर्गतो वायुः शरीरं चोर्ध्वमानयेत्।

फिर इसी प्रकार दूसरे चक्र का भी भेदन करना चाहिए। उस चक्र के भीतर जाकर वायु शरीर को ऊपर उठाता है।

1. घ. कर्तव्यस्तेन।2. ग. विधूतानन्द॰, घ. विमलानन्द॰।3. घ. परं मूर्द्धर्नं।4. घ. उद्धृत्यापूर्य्य तत्रैव।

हृदयग्रन्थिभेदेन सम्यगभ्यासयोगतः।।34।।
तत्र सन्धिषु सम्बद्धं तत्तात्वाद्यन्तगो मरुत्।
सम्यक् संशोध्य स्वं देहं भ्रूमध्यमुपसर्पति।।35।।

भलीभाँति अभ्यास करने पर हृदय की ग्रन्थि का भेदन करने से वहाँ सन्धियों से होकर वायु तालु आदि प्रदेशों में संचरित होकर अपने शरीर का संशोधन कर भ्रू-मध्य में चली जाती है।

तत्र स्याद् द्विदले पद्मे सुधानिधिरलौकिकम्।
अनृतं बाहयेत्तेन अमृतत्वाय कल्पते।।36।।

वहाँ द्विदल कमल में अमृत का अलौकिक खजाना है। इस अमृत के प्रवाह में असत्य को प्रवाहित करावें अर्थात् उसका शोधन करें। इससे अमरत्व की प्राप्ति होती है।

भेदेन पञ्चमस्येव पर्वणोऽधिगते पुनः।
शब्दब्रह्मापि निखिलं तेन[1] सर्वज्ञता भवेत्।।37।।

पाँचवीं गाँठ के खुल जाने पर पर्वों का ज्ञान होने पर उनमें स्थित शब्दब्रह्म की गाँठ खुल जाती है, तब वह सर्वज्ञ हो जाता है।

मूलाधारे स्थितं वायु सुषुम्णानाडिमध्यगम्।
तत्तद् ग्रन्थिविभेदेन ब्रह्मरन्ध्रं नयेदपि।।38।।

मूलाधार में स्थित वायु जो सुषुम्णा नाडी से होकर गजरती है, उस वायु के वेग से बीच में स्थित ग्रन्थियों को खोलते हुए वायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जायें।

पूर्वोक्ताभ्यासयोगेन द्वादशान्तर्गतं पुनः।
तदेव निखिलं ज्ञानं जन्मापि सफलं ततः।।39।।

पूर्वोक्त प्रकार से अभ्यास करते हुए द्वादशार चक्र तक जब वायु पहुँच जाती है, तब समग्र ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे यह जन्म भी सफल हो जाता है।

वैराग्येण तदप्येति त्यागेनैव हि तत्परम्।
संन्यासेनैव योगीन्द्र नान्यो मार्गोऽस्ति तस्य तु।।40।।

---

1. ग. येन।

हे योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! वैराग्य से ही वह स्थिति भी आती है, त्याग से ही उससे भी ऊपर की स्थिति आती है। यह सब संन्यास से सिद्ध होता है। इस पृथ्वी पर इससे भिन्न कोई रास्ता नहीं है।

बहिरन्तर्गतं कृत्वा मूलाधाराच्च चिन्मयम्।
द्वादशान्तं समुत्क्रम्य यावन्नावर्तते पुनः।।41।।

बाहर स्थित चैतन्य को अपने अन्दर लेकर तथा मूलाधार से चित् तत्त्व लेकर द्वादशार चक्र को पारकर साधक पुनः लौटता नहीं, अर्थात्, मुक्त हो जाता है।

योगीन्द्र मुक्तिमार्गोऽयं सर्वस्मिन्नपि दर्शने।
नैवाप्यत्र मतं भिन्नं सर्वैरपि सुशोभितम्।।42।।

योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! सभी दर्शनों में कहा गया यह मुक्ति का मार्ग है। यहाँ मत में कोई भिन्नता नहीं है और इसे सबने सँबारा है।

विरजेत् संन्यसेद् ब्रह्म साक्षात्कुर्यात् सुखी भवेत्।
पुरुषार्थोऽयमेवात्र नातः किञ्चिन्न विद्यते।।43।।

रजोगुण से निवृत्त होकर कर्मों को सौंपकर ब्रह्म से साक्षात्कार कर जीव सुखी हो जाता है। यही इस लोक में पुरुषार्थ है, इससे आगे कुछ भी नहीं है।

अखण्डानन्दयोगेन नैवात्मानं वियोजयेत्।
स्ववर्णाश्रमधर्मेण नैव तावद् वियोजयेत्।[1]।44।।

अखण्ड आनन्द के साथ आत्मा का कभी विच्छेद न करावें। अपने वर्ण और आश्रम के कारण यह विच्छेद न करावें।

इदं सत्यमिदं सत्यं सत्येनैवाति वर्तयेत्।
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते।।45।।

यह सत्य है, यह सत्य है। इस सत्य के विपरीत आचरण न करें। श्रीराम परम सत्य हैं, परम ब्रह्म हैं। श्रीराम से आगे कुछ भी नहीं है।

सर्वशास्त्ररहस्यज्ञ मया तव महात्मनः।
अगस्ति-संहिता नाम प्रोक्तेयं सर्वकामधुक्।।46।।
अध्यात्मालोकने दीपकलिकाज्ञाननाशनी।
भोगमोक्षप्रदा नित्यमायुरारोग्यवर्द्धिनी।।47।।

1. ग. में अनुपलब्ध।

सभी शास्त्रों का रहस्य जाननेवाले हे सुतीक्ष्ण! आप महात्मा हैं, इसलिए मैंने आपको अगस्त्य-संहिता सुनायी, जिससे सभी कामनाएँ पूर्ण होती है। अध्यात्म को प्रकाशित करनेवाली और अज्ञान का नाश करनेवाली यह दीपशिखा है। यह नित्य रूप से भोग और मोक्ष देनेवाली है, आयु और आरोग्य बढ़ानेवाली है।

श्रुता दृष्टापि लिखिता बहिरन्तश्च पावयेत्।
आदिमध्यावसानान्तं यः सकृद् वा निरीक्षयेत्।।48।।
पापात्मापि समुत्क्रम्य ब्रह्मभूयाय कल्पते।
सर्वदालोकयेद्यस्तु ब्रह्मविद् याति सद्गतिम्।।49।।
प्राप्नोति लोकमखिलं सद्योऽभीष्टमवाप्नुयात्।

इस ग्रन्थ के श्रवण, दर्शन और लेखन से बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है। इसका आदिभाग, मध्यभाग अथवा अन्तभाग का एक बार भी कोई दर्शन करे तो पापी भी उससे निकलकर ब्रह्मलीन हो जाता है। प्रतिदिन जो इसका दर्शन करते हैं, वे ब्रह्मज्ञानी होकर उत्तम गति प्राप्त करते हैं, सभी लोकों को प्राप्त करते हैं तथा तुरत अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं।

पुस्तकं लिखितं यस्य[1] गृहे तिष्ठति पूजितम्।।50।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वर्द्धतेऽस्य दिने दिने।
पुत्रैः पौत्रैः कुलं वास्य वर्द्धते सुश्रिया सह[2]।।51।।

जिनके घर में इस लिखित एवं पूजित पुस्तक रहती है, उनकी आयु आरोग्य और ऐश्वर्य प्रतिदिन बढ़ते हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि से उनका वंश सुन्दर लक्ष्मी के साथ बढ़ता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये योगवर्णनम् नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अयमेव परो मार्गः कर्माप्येतत् परात् परम्।
राम एव परं ज्योतिः सच्चिदानन्दलक्षणम्।।1।।

---

1. ग. सम्यक्। 2. क. पुत्रपौत्रप्रपौत्राद्यैः कुलं वास्य प्रवर्द्धते ।

अगस्त्य बोले– यही मुक्ति का सबसे उत्तम मार्ग है और यहीं सर्वश्रेष्ठ कर्म है। राम ही परम ज्योति हैं, जो सत् स्वरूप, चैतन्यस्वरूप और आनन्दस्वरूप हैं।

परं ज्योतिः परञ्चात्मा तथैव द्वयमोक्षयोः[1]।
अन्त्याद्ययोर्यकारस्य द्वितीयादिस्वरान्तयोः।।2।।

श्रीराम परम ज्योतिःस्वरूप हैं, इस संसार की परम आत्मा हैं और उसी प्रकार आदि और अन्त के द्वन्द्व स्वरूप जन्म और मोक्ष की परम ज्योति हैं। यकार अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति की भी परम ज्योति हैं। द्वितीया शक्ति अर्थात् माया से स्वर्ग तक की परम ज्योति है।

श्रुतिस्मृतिपुराणानि सम्यगालोक्य निश्चितम्।
वसिष्ठवामदेवाद्यैर्नारदाद्यैश्च यत्नतः।।3।।

वसिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि और नारद आदि भक्तों ने वेद, स्मृति,और पुराणों का यत्नपूर्वक भलीभाँति अनुशीलन कर ऐसा निश्चय किया है।

यज्ञोऽयमस्माद् भूतानि जङ्गमाजङ्गमं ततः।
इतरेतरमिश्रेभ्यस्तेभ्यो भूतानि यज्ञिरे।।4।।

श्रीराम यज्ञस्वरूप हैं, जिससे स्थावर और जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और स्थावर एवं जंगम प्राणियों में एक दूसरे के मिश्रण से अन्य प्राणियों की भी उत्पत्ति हुई है।

शब्दप्रकाशमानोऽयं तत एष विनिर्गतः।
व्यस्त एव तु शारीरः परः सारविलक्षणः।।5।।

शब्द को द्वारा प्रकाशित जो यह मन्त्र है, वह भी श्रीराम से ही निर्गत हुआ है, जो परम सारमय मन्त्रों में विलक्षण है, वह व्यस्त रूप में , पृथक् रूप में शरीर से सम्बद्ध है अर्थात् शरीर के अवयव मुख से उच्चरित होने योग्य है, वैखरी नाद है।

पञ्चाशद्वर्णरूपेण सोऽप्यनेकविधो भवेत्।
पदवाक्यादिना यस्य शब्दस्यान्तो न विद्यते।।6।।

पचास वर्णों के रूप में वह मन्त्र भी अनेक प्रकार का है। यह मन्त्र पद, वाक्य आदि के भेद से शब्द रूप में अनगिनत है।

1. ग. द्वयमाश्रयोः।

तस्य कारणरूपत्वादभिधानाभिधेययोः।
उपास्यं परमं लोके तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।।7।।
यान्त्यं प्रकाशयेत् सर्व परं ज्योतिः स्वतः परम्।
यादिरभ्युदयात्मत्वात् सर्वदाभ्युदयाय कृत्।।8।।

वह मन्त्र अभिधान अर्थात् सगुण श्रीराम और अभिधेय अर्थात् परब्रह्म श्रीराम दोनों का कारण है, अतः संसार में यह परम उपास्य है; क्योंकि इसी मन्त्र में सबकुछ प्रतिष्ठित है। यह यकारान्त शब्द 'अभय' को प्रकाशित करता है और यह परम ज्योतिस्वरूप और अपने आप उत्पन्न है। मन्त्र यकारादि यज्ञस्वरूप है, अतः वह सर्वदा अभ्युदय का कारक है।

अतो यत्नेन जप्यन्तु भुक्तिमुक्तिपरीप्सुना।
अतः श्रुतेः परं नास्ति तदेतद् वाचको मनुः।।9।।

अतः प्रयत्नपूर्वक भोग और मोक्ष चाहनेवालों के द्वारा इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्रीराम के वाचक वे मन्त्र हैं और इस श्रुति से ऊपर कुछ भी नहीं है।

मनूनामपि सर्वेषामयमेव विशिष्यते।
अयमेवान्तमुत्सृज्याकारमेकाक्षरो मनुः।।10।।

सभी मन्त्रों में यह 'राम' मन्त्र है, वह विशिष्ट है। अन्तिम अकार का त्याग कर देने से 'राम्' (रां) यह एकाक्षर मन्त्र बन जाता है।

उपास्य मनोयज्ञोयमुत्पादयति तत्परम्।
यद्येतत् त्रितयं याति नत्या सह समुद्रितम्।।11।।
मायामन्मथवेदादिपूर्वो व्युत्क्रमपूर्वकः।

यह मानस यज्ञ श्रीराम की उपासना कर इस यज्ञ से भी विशिष्ट यज्ञ को उत्पन्न करता है। (यज्ञेन यज्ञमयजन्त) तब यह मन्त्र 'नति' (नमः) के साथ माया(ह्रीं) मन्मथ (क्लीं) और वेद (ॐ) के पूर्व में प्रयोग से तीन प्रकार के हो जातें हैं- ॐ रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः एवं क्लीं रामाय नमः।

श्रीबीजान्त्योऽयमेव स्यात्तदाद्यो वा षडक्षरः।।12।।
यदि नत्यन्तसहितं तद्द्वयं वापरो मनुः।
पञ्चवर्णात्मकस्तस्माद्यस्मात् सर्वं प्रजायते।।13।।

इसी मन्त्र के अन्त में श्रीबीज (श्रीं) लगाने पर पहला षडक्षर मन्त्र होगा- रामाय नमः श्रीं। यदि केवल 'नति' (नमः) अन्त में जोड़ें अथवा ॐ, ह्रीं, क्लीं में से एक आदि में और श्रीबीज (श्रीं) अन्त में जोड़ें तो अन्य मन्त्र हो जाएँगे। जैसे- रामाय नमः, ॐ रामाय श्रीं, ह्रीं रामाय श्रीं, क्लीं रामाय श्रीं। ये पंचवर्णात्मक चार प्रकार के मन्त्र इससे बनेगें; क्योंकि मन्त्र से सब कुछ उत्पन्न होते हैं।

चन्द्रान्तः परमो मन्त्रो भद्रान्तश्चतुरक्षरः।
ऐहिकामुष्मिकं वास्याप्युक्तमेव फलं विदुः।।14।।

'चन्द्र' शब्द अन्त में जोड़कर तथा 'भद्र' अन्त में जोड़कर चार अक्षर वाले मन्त्र बनते हैं- 'रामचन्द्र' 'रामभद्र'। इन मन्त्रों के भी पूर्व में कहे गये लौकिक और पारलौकिक फल कहे जाते हैं।

श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तर्गतो मनुः।
षडक्षरः स एवं यः स मन्त्रश्चतुरक्षरः।।15।।

श्रीबीज, (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं) में से एक एक बीज से सम्पुटित कर यह चतुरक्षर मन्त्र षडक्षर मन्त्र बन जाता है।

तारमायारमानंगबीजपूर्वः स एव हि।
अक्षरोऽनेकधा प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः।।16।।

यह षडक्षर मन्त्र तार (ॐकार), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) और अनंग (क्लीं) के पूर्व प्रयोग से अनेक प्रकार का कहा गया है, जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं।

चन्द्रभद्रनमस्कारैस्तत्तद्बीजैश्च योजितः।
षट्सप्ताष्टनवादित्येनैवं भिन्नोऽप्यनेकधा।।17।।

चन्द्र, भद्र, नमः और उपर्युक्त बीजाक्षरों के योग से षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर, नवाक्षर आदि अनेक मन्त्रों के रूप में विभिन्न प्रकार के होते हैं।

एकादित्वेन बहुधा स्वयं रामेत्यतः परम्।
सर्वाभीष्टप्रदत्वेनानन्तत्वेनापि भिद्यते।।18।।

एकाक्षर आदि मन्त्र के उपरान्त ॐ राम ऐसा जोड़कर सभी मन्त्र इच्छित फल देने के कारण कामना की दृष्टि से तथा अनन्त स्वरूप की दृष्टि से मन्त्रों के अनेक भेद होते हैं।

पादाद्यात्मा पदाद्यात्मा तद्विशेषे विशिष्यते।
स एव भिद्यतेऽनन्तभेदेनाप्यधिकारिणाम्।।19।।

कुछ मन्त्र पाद अर्थात् चरणस्वरूप होते हैं तो कुछ पद अर्थात् शब्दस्वरूप होते हैं। इस विशेषता के कारण भी मन्त्र अनेक प्रकार के होते हैं। वही मन्त्र असंख्य प्रकार के अधिकारी के भेद से भी विभिन्न प्रकार के होते हैं।

मन्त्राणामृषिरेतेषां ब्रह्मागस्त्यः शिवोऽह्यहम्।
छन्दो गायत्रमेवाहुर्देवता राम उच्यते।।20।।
पूर्वापरबीजशक्ती भुक्तिमुक्तिप्रयोजनम्।
आद्यन्तयुक्तबीजेन षडङ्गं पल्लवैः सह।।21।।

इन मन्त्रों के ऋषि ब्रह्मा, शिव और मैं अगस्त्य हूँ। छन्द गायत्री ही कहा गया है और देवता श्रीराम कहे गये हैं। आदि और अन्त में लगाये गये बीज शक्तियाँ हैं तथा भोग और मोक्ष प्रयोजन है। आदि और अन्त में प्रयुक्त बीजों के तथा पटल विस्तार के साथ मन्त्र के छह अंग होते हैं।

भालमस्तकयोर्वामदक्षयोश्च भ्रुवोर्दृशोः।
कर्णयोर्घ्राणयोर्हन्वोरोष्ठयोर्दन्तमूलयोः ।।22।।
जिह्वामूलकण्ठयोश्च ककुदोः कुचयोरपि।
अंसयोर्भुजयोश्चैव पार्श्वयोः कुक्षिहृत्कयोः।।23।।
पृष्ठनाभ्योश्च सक्थिन्यूर्वोः जान्वोश्च जंघयोः पदोः।
विन्यसेच्छक्तिबीजानि सीतारामस्वरूपकम्।।24।।
विन्यसेत् संहृतिन्यासं पादादिकशिरस्यपि।
उत्पत्तिन्यासमप्यत्र नाभ्यादिरधरोत्तरम्।।25।।
न्यसेत् प्रत्यक्षरं न्यासं मूर्तिन्यासमतः परम्।
तत्त्वन्यासं केशवादिन्यासमप्यथ विन्यसेत्।।26।।
सर्वाङ्गमपि सर्वेण मन्त्रेणापि प्रविन्यसेत्।

ललाट, मस्तक, बायाँ भौंह, दायाँ भौंह, बायीं आँख, दायीं आँख, दोनों कान, दोनो टुड्ठी, दोनों होठ, दोनों जबड़े, जिह्वामूल, कण्ठ, गले का दोनों टेंटुए, दोनों कंधे, दोनों बाहें, दोनों पार्श्व, कोख, हृदय, पीठ, नाभि, दोनो जाँघों की हड्डियों, दोनों जाँघों का मांसल भाग, दोनों पैर इन स्थानों में शक्तिबीजों से

श्रीसीताराम के स्वरूप न्यास करें। तब प्रत्येक अक्षर से संहारन्यास करें जो पैरों से लेकर मस्तक तक के क्रम से होता है तथा इसके बाद नाभि से प्रारम्भ कर ऊपर नीचे उत्पत्तिन्यास करें। तब मूर्तिन्यास करें, तब तत्त्वन्यास के बाद केशवादिन्यास करें। अन्त में, सभी मन्त्रों से सर्वाङ्गन्यास करें।

ध्यायेद् हृत्पुण्डरीकाक्षं परं ज्योतिः परात्परम्।।27।।
तत्रैव देवमभ्यर्च्य मानसैरुपचारकैः।
जपेत् क्वचन चैकान्ते रामं ध्यायन्ननन्यधीः।।28।।

इसके बाद हृदयरूपी कमल के समान आँखोंवाले परम ज्योतिर्मय, परात्पर पुरुष का ध्यान करें। वहीं मानसोपचार से देवता की अर्चना कर कहीं एकान्त स्थान में श्रीराम का ध्यान एकाग्र होकर करते हुए जप करें।

नीलजीमूतसंकाशं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्।
सन्तप्तकाञ्चनप्रख्यां सीतामङ्कगतां पुनः।।29।।
अन्योऽन्याश्लिष्टहृद्बाहुनेत्रं पश्यन्तमादरात्।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे चञ्चलालकम्।।30।।
स्पृशन्तं वलनोत्सङ्गैः[1] परिहासे मुहुर्मुहुः।
विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणैकपरायणम्।।31।।
सर्वरूपोज्ज्वलद्वन्द्वं[2] योषित्पुरुषयोरिव।
श्रीरामसीतयोः सर्वसम्पत्करविधायकम्।।32।।

श्रीराम नीले मेघ के समान हैं और विद्युत् से समान वर्ण (पीत) के वस्त्र पहने हुए हैं और तपे हुए सोने के समान आभा वाली सीता उनकी गोद में बैठी हुई हैं। एक दूसरे के हृदय, बाहें और नेत्र मिले हैं, जिसे श्रीराम आदर के साथ देख रहे हैं। दाहिने हाथ की अंगुलियाँ श्रीसीता के स्तनाग्र पर लटके चंचल लटों को बार बार परिहास में घेर कर आलिंगन कर छू रही हैं। श्रीराम पान चबा रहे हैं, सभी रूपों में उज्ज्वल रहनेवाले युगलस्वरूप स्त्री और पुरुष के समान श्रीसीताराम का ध्यान करें, जो सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं।

जपहोमार्चनादीनि कुर्यात् कर्माणि सन्ततम्।
यत्किञ्चिदप्यनन्तं स्यात् सत्यं सत्यं न संशयः।।33।।

1. ग. च ततो त्याग=।2. ग. पर्वरूपोज्ज्वलद्वन्द्वं।

तब निरन्तर जप, होम, पूजा आदि कर्म करें। इससे जो कुछ भी होगा, वह अनन्त फलदायक हो जायेगा, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

तदेतद्वाचको मन्त्रः सर्वस्यार्थस्य साधकः।
सदसद्वाचकश्चायं मन्त्रो विजयते परः।।34।।

मन्त्र सार्थक हो या अनर्थक, सभी प्रयोजनों के साधक हो जाते हैं। सार्थक या अनर्थक परम मन्त्र की जीत होती है।

रामात्मनो मनोः सद्यः स्मरणात् कीर्तनादपि।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं कृत्वाप्यकल्मषम्।।35।।

श्रीराम के स्वरूप मन्त्र स्मरण करने और कीर्तन करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को शीघ्र निष्पाप बनाते हैं।

संचिनोति नरो मोहाद्यद्यत्तदपि नाशयेत्।
ग्राम्यारण्यपशुघ्नत्वं संचितं दुरितं च यत्।।36।।
निःशेषं नाशयत्येव रामात्मा द्व्यक्षरो मनुः।

मनुष्य मोहवश जो जो पाप संचित करते हैं, उन्हें भी ये मन्त्र शीघ्र नाश कर देते हैं। गाँव या जंगल में रहनेवाले पशु की हत्या का जो संचित पाप है, उसे श्रीराम स्वरूप दो अक्षरों वाला 'राम' मन्त्र पूर्णतः नष्ट कर देता है।

[1]तन्मृष्यवाक्च कोपादिभावोद्भावकृतार्चिनः।।37।।
मद्यपानेन[2] यत्पापं तदप्याशु विनाशयेत्।
अभक्ष्यभक्षणात्[3] पापं मिथ्याज्ञानसमुद्भवम्।।38।।
सर्वं विलीयते राममन्त्रस्यास्यैव कीर्तनात्।

मिथ्या भाषण, क्रोध आदि के कारण उत्पन्न पाप, उद्भाव (उपेक्षा), आग लगाने आदि का पाप तथा मद्यपान से जो पाप होता है उसे शीघ्र यह विनष्ट करता है। अभक्ष्य वस्तुओं के खाने से जो तथा मिथ्या ज्ञान के कारण उत्पन्न पाप श्रीराम के इसी मन्त्र के जप से विलीन हो जाते हैं।

श्रोत्रियस्वर्णहरणाद्यच्च पापमुपार्जितम्।।39।।
रत्नादेरपहारेण तदप्याशु विनाशयेत्।।

वैदिकों का सोना चुराने या छीनने से,रत्न आदि छीनने से जो पाप संचित होता है, उसे भी यह मन्त्र यह शीघ्र नाश कर देता है।

1. घ. में अनुपलब्ध।2. ग. मधुपानेन ।3. ग. अभक्षणाय।

गत्वा तु मातरं मोहादगम्यायाश्च योषितः।।40।।
उपास्यानेन मन्त्रेण समं तदपि नाशयेत्।।

मोहवश मातृतुल्य नारी तथा अगम्या से मैथुन करने का पापी इस मन्त्र की उपासना कर उस पाप को नष्ट कर लेते हैं।

महापातकपापिष्ठसंगत्या सञ्चितञ्च यत्।।41।।
नाशयेत् तत् कथालापशयनासनभोजनैः।

महापातकी और अन्य पापियों की संगति करने से जो पाप संचित होता है, वे श्रीराम की कथा की चर्चा, श्रीराम के मन्दिर में शयन, उपवेशन (बैठने) और प्रसाद खाने से नष्ट हो जाते हैं।

पितृमातृवधोत्पन्नं बुद्धिपूर्वकमव्ययम्।।42।।
निःशेषं नाशयत्येव कालत्रयसमुद्भवम्।
भ्रातृमित्रसुहृद्यानां यद्वा विश्वासघातिनाम्।।43।।
यद् वा बालवधोत्पन्नं विषशस्त्रास्त्रमायिकम्।
गुरुपुत्रकलत्रादिवधोत्पन्नं दुरात्मनाम्।।44।।
तदनुष्ठानमात्रेण सर्व एव[1] विलीयते।

माता-पिता के वध से उत्पन्न, जान-बूझकर किये गये तथा तीनों कालों में उत्पन्न पाप को यह मन्त्र नष्ट करता है। भाई, मित्र और अन्य प्रिय लोगों के साथ विश्वासघात का पाप, बाल-हत्या तथा विष देकर, शस्त्र-अस्त्र से अथवा जादू-टोना से की गयी हत्या का पाप अथवा गुरु, पुत्र, स्त्री आदि की हत्या का पाप जो दुरात्माओं को होता है, वह पाप श्रीराम के मन्त्र का अनुष्ठान मात्र करने से नष्ट हो जाता है।

तत् सद्गुरूपदिष्टेन वर्तनानुष्ठितं पुनः।।45।।
रामात्मा मन्त्र एवायं पापराशिनिरासकृत्।

इसलिए सद्गुरु के उपदेश से मण्डल में अनुष्ठान किया गया यह श्रीराम स्वरूप मन्त्र पापराशि को निरस्त करनेवाला है।

यत्प्रयागादितीर्थोत्थप्रायश्चित्तादिकैरपि ।।46।।
नैवापयुज्यते पापं तदप्याशु विनाशयेत्।

1. ग. एष।

प्रयाग आदि तीर्थों में प्रायश्चित्त आदि करने से भी जो पाप नष्ट नहीं होते हैं, उन्हें भी यह मन्त्र शीघ्र नष्ट कर देता है।

पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु कुरुक्षेत्रादिषु स्वयम्।।47।।
बुद्धिपूर्वमघं कुर्यात् तदप्याशु विनाशयेत्।

कुरुक्षेत्र आदि सभी पुण्यतीर्थों में स्वयं जान बूझकर जो पाप किया जाये, उसे भी शीघ्र विनष्ट कर देता है।

आत्मतुल्यसुवर्णादिदानैर्बहुविधैरपि ।।48।।
किञ्चिदप्यपरिक्षीणं पापं तदपि नाशयेत्।

अपने भार के बराबर सुवर्ण का दान आदि अनेक प्रकार के दानों से जो पाप नष्ट नहीं होता, उसे भी यह मन्त्र नष्ट कर देता है।

यद्वातिसञ्चितं पापं मूलबद्धमघञ्च यत्।।49।।
तन्मन्त्रस्मरणादेव निःशेषं तत्प्रणश्यति।।50।।

अथवा अधिक मात्रा में संचित जो पाप है और जो पाप अपनी जड़ें जमा चुका है, मद्यपान आदि से जो पाप होता है, वे सारे पाप इस मन्त्र के स्मरण मात्र से अशेष रूप में नष्ट हो जाते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रमहिमाख्यानं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः।।24।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

सर्वागमैकतत्त्वज्ञ[1] ब्रह्मनिष्ठ तपोधन।
रामात्मनस्त्वया तत्त्वं ब्रह्मणः परमव्ययम्।।1।।
प्रदर्शितं सम्यगेव सुविस्तरमनेकधा।
षडक्षरविधानं तु[2] सम्यक् ज्ञातं मया प्रभो।।2।।
अन्येषां राममन्त्राणामनुष्ठानं कथं मुने।

1. ग. सर्वेषामेव तत्त्वज्ञ।2. ग. वा ।

षडक्षरविधानं तु विधानान्तरमस्ति वा।।3।।
सर्वमेव समाचक्ष्व भक्तस्य त्वयि सुव्रत।।4।।

सुतीक्ष्ण बोले– हे महामुनि अगस्त्य ! आप सभी आगमों के तत्त्वों को जानते हैं, ब्रह्म में लीन हैं, तपस्वी हैं, श्रीराम के रूप में जो स्वयं परमात्मा हैं, उनके विषय में आपने भलीभाँति मुझे समझा दिया है। मैंने षडक्षर मन्त्र भी भलीभाँति जान लिया है। अब यह बतलाएँ कि श्रीराम के अन्य मन्त्रों का किस प्रकार अनुष्ठान किया जाता है। क्या केवल षडक्षर विधान ही है या दूसरा भी कोई विधान है? हे सुव्रत अगस्त्य! मैं आपका भक्त हूँ, इसलिए मुझे सबकुछ कहें।

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण शृणु वक्ष्यामि श्रद्धधानांपते पुनः।
वक्तव्यं तव यत्नेन यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः।।5।।

अगस्त्य बोले– हे श्रद्धालुओं में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! फिर से सुनो। तुम वैष्णवों में श्रेष्ठ हो, इसलिए मुझे सारे विधान बतला देने चाहिए।

ये शृण्वन्ति कथां विष्णोर्वन्दन्ति चरितं हरेः।
मुक्तकण्ठञ्च गायन्ति हरिं नृत्यन्ति सुन्दरम्।।6।।
आनन्दाश्रुपरीतात्मा गात्रेषु पुलकाञ्चिताः।
आनन्दनिर्भराश्चैव स्खलन्तश्च[1] पदे पदे।
उच्चैः श्रीराम रामेति वदन्ति च हसन्ति च।।7।।
एवमादिगुणैर्युक्ताः जनाः[2] रामसमा हि ते।
[3]वैष्णवा मनवाः सर्वे मुक्तिदाः स्युः क्रमेण हि।।8।।

जो श्रीविष्णु की कथा सुनते हैं, हरि के चरित की वन्दना करते हैं, हरि की लीलाओं को स्मरण करते हुए मुक्तकण्ठ होकर इसका गान करते हैं। आनन्द के आँसू से भरे हुए चित्त वाले, पुलकित होकर आनन्दमग्न होकर पग-पग पर लड़खड़ाती बोली में जोर जोर से 'श्रीराम राम' बोलते हैं, हँसते हैं- इस प्रकार के गुणों से युक्त होकर जो मानव विष्णु के उपासक हैं, वे श्रीराम के समान हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के सभी मन्त्र मुक्ति देनेवाले हैं, उन्हें क्रम से सुनो।

राममन्त्रास्तु विप्रेन्द्र शीघ्रमुक्तिप्रदाः शृणु।
विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि।।9।।

1. ग. स्तुवन्तश्च, घ. प्लवन्तश्च। 2. ग. मान्याः । 3. घ. यहाँ से छह पंक्तियाँ

विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः।
सामान्येन तु सर्वेषां मनूनां राघवस्य तु।।10।।
अनुष्ठानविधिर्ज्ञेयो विशेषास्तत्र तत्र वै।
वक्ष्यते ते महाभाग यथामति सुविस्तरम्।।11।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! शीघ्रमुक्ति देनेवाले जो श्रीराम के मन्त्र हैं, उसके विषय में सुनो। गुरु से दीक्षा, पंचांग पुरश्चरण और न्यास-विधानों के विना ही केवल जप करने से सिद्धि देने वाले ये मन्त्र हैं। श्रीराम के सभी मन्त्रों की सामान्य अनुष्ठान विधि जाननी चाहिए। मन्त्रों के सन्दर्भ में जो विशेष विधियाँ हैं, उसे अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ मैं विस्तार से कहता हूँ।

षडक्षरविधानं तु सर्वेषां प्रकृतिं विदुः।
भूतशुद्धिर्विधातव्या सर्वेषामादितो मुने।।12।।
न्यासाः पूर्वोदिताः सर्वे कार्या यत्नेन सुव्रत।

षडक्षर मन्त्र का जो विधान है, वही सभी मन्त्रों का स्वाभाविक विधान है। सभी मन्त्रों के अनुष्ठान के आरम्भ में भूतशुद्धि करनी चाहिए। पूर्व में कहे गये सभी न्यास यत्नपूर्वक करें।

[1]अनुष्ठानेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।।13।।
आश्रमस्थाश्च सर्वेऽपि मन्त्राणामधिकारिणः।
ममुक्षुभिर्विरक्तश्च सदा सेव्यो रघूत्तम।।14।।
यतीनां जितचित्तानामुपास्यः प्रणवो यथा।

इन अनुष्ठानों में सभी मनुष्यों का अधिकार है। सभी मनुष्यों में जो किसी आश्रम में है वे मन्त्र के अधिकारी हैं। मोक्ष चाहनेवाले और संसार से विरक्त जो हैं वे श्रीराम का भजन करें। जैसे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेनेवाले जो यति हैं वे प्रणव (ॐकार) की उपासना करते हैं।

दीक्षाविधिस्तु कर्तव्यो विधेयो देशिकोत्तमैः।।15।।
सन्ध्यां दीक्ष्यान्वितः कुर्यात् तत्तन्मन्त्रानुसारतः।

दीक्षा की विधि जो पूर्व में कही गयी है वही गुरु को अपनानी चाहिए। शिष्य दीक्षा लेने के बाद से अपने अपने समय के अनुसार सन्ध्यावंदन करें।

1. घ. यहाँ चार पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

प्राणायामस्तु गायत्र्या सर्वेषामपि सत्तम।
[1]जलाभिमन्त्रणं वापि मूलमन्त्रेण मार्जनम्।।16।।
जलस्य प्राशनं वापि ज्ञेयं चार्घ्यस्य वै मुने।
सीतामन्त्रेण कुर्वीत मूलमन्त्रजपं तथा।।17।।
उपस्थानादिकाः कार्यास्तत्रैव गतकल्मषैः।

सबके लिए गायत्री से प्राणायाम विहित है। जलाभिमन्त्रण, मार्जन, जलप्राशन, अर्घ्यप्रदान ये कर्म मूलमन्त्र (दीक्षामन्त्र) से करें। मूलमन्त्र का जप कर और सीतामन्त्र (श्रीं सीतायैः नमः) से उपस्थान आदि क्रियाएँ निष्पाप साधकों को करना चाहिए।

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्।।18।।
नमामि पुण्डरीकाक्षमाञ्जनेयगुरुं परम्।
नमः श्रीरामदेवाय ज्योतिषां पतये नमः।।19।।
साक्षिणे सर्वभूतानां परमानन्दरूपिणे।
रघुनाथाय दिव्याय महाकारुणिकाय च।।20।।
नमोऽस्तु कौशिकानन्द दायिने ब्रह्मरूपिणे।।

सूर्यमण्डल के मध्य में अवस्थित सीतासहित कमलनयन श्रीराम को प्रणाम है, जो हनुमान् के परम गुरु हैं। ज्योतिःस्वरूप ग्रहों और नक्षत्रों के स्वामी देवता श्रीराम को प्रणाम है। जो सभी प्राणियों के साक्षी महान् करुणामय दिव्य श्रीरघुनाथ परमानन्द स्वरूप हैं, उन्हें प्रणाम। विश्वामित्र को आनन्दित करनेवाले ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को प्रणाम।

दीपस्थानञ्च कर्त्तव्यं रामं ध्यायेदनन्यधीः।।21।।
त्रिकालमेवं यः कुर्याद् राम एव भवेत् स्वयम्।
पुरश्चर्या तु सर्वेषामुक्तमार्गेण वेष्यते।।22।।

(इस प्रकार उपस्थापन कर) श्रीराम का ध्यान करते हुए दीप स्थापित करें। इस प्रकार जो तीनों सन्ध्या करते हैं, वे स्वयं राम ही हो जाते हैं। सभी मन्त्रों का पुरश्चरण उक्त मार्ग से भी अनुशंसित है।

एवं सिद्धमनुं मन्त्री प्रत्यहं नियतव्रतः।
[2]षट्सहस्रं सहस्रं च त्रिशतं शतमेव च।।23।।
जपं कुर्यात् प्रयत्नेन नो चेत् प्राप्नोत्यधो गतिम्।

1. ग. में दो चरण नहीं हैं । 1.घ.दो पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

इस प्रकार मन्त्र के ज्ञाता सिद्ध मन्त्र का प्रतिदिन छह हजार, एक हजार, तीन सौ अथवा एक सौ संख्या में यत्नपूर्वक जप करें अन्यथा उनकी अधोगति होती है।

ध्यात्वा वीरं परं ब्रह्म राघवं नियतव्रतः[1]।।24।।
चतुर्भुजं शंखचक्रगदापद्मधरं विभुम्।
किरीटिनमुदाराङ्गं वनमालोपशोभितम्।25।।
सीतालंकृतवामाङ्कं पीताम्बरधरं विभुम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं तेजसा मुने।।26।।

नियमों का पालन करते हुए वीर एवं परब्रह्मस्वरूप श्रीराम का ध्यान करें। वे चतुर्भुज देव श्रीराम शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किए हुए हैं। उनके मस्तक पर मुकुट शोभित है, अंग विशाल हैं, गले में वनमाला शोभित है। ऐसे श्रीराम का वाम भाग श्रीसीता से शोभित है। वे पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं और अपने तेज से शुद्ध स्फटिक के समान दीप्तिमान् हैं।

अथवा द्विभुजं देवं[2] नीलोत्पलसमद्युतिम्।
अनेकादित्यसंशोभि[3] पद्मस्योपरिसंस्थितम्।।27।।
काञ्चनप्रख्यया देव्या वामभागस्थयान्वितम्।
लक्ष्मणेन धृतच्छत्रं सुवर्णाभेन धीमता।।28।।
अन्यैश्च सेवितं दिव्यं परिचारैरनेकशः।

अब दो भुजाओं वाले देव श्रीराम का ध्यान करें, जिनकी शोभा नीलकमल के समान है, अनेक सूर्यों की भाँति चमकीले हैं, कमल के आसन पर स्थित हैं। स्वर्ण के समान कान्तिवाली और वामभाग में स्थित श्रीसीता से युक्त हैं। स्वर्ण के समान शोभित, बुद्धिमान् लक्ष्मण श्रीराम के ऊपर छत्र ताने हुए हैं। अन्य परिचारक गण उस दिव्य श्रीराम की सेवा कर रहे हैं।

मानसैरुपचारैस्तु सम्यक् संपूज्य यत्नतः[4]।।29।।
कल्पवृक्षसमुद्भूतैर्भावितं मनसा चितम्।
मूलमन्त्रजपं कुर्यान्नियतं नियतेन्द्रियः।।30।।

ऐसे श्रीराम का ध्यान कर कल्पवृक्ष से उत्पन्न सामग्रियों को मन से चुनकर एकत्रित कर उन उपचारों से देर तक मानस-पूजा करें और जितेन्द्रिय होकर नियमों का पालन करते हुए मूलमन्त्र का जप करें।

---

1. घ. विजितेन्द्रियः।2. ग. अथाजं च विभुं देवं ।3. ग. ०संकाशं।4. सेव्यं पूज्यं प्रयत्नतः

बाह्यपूजां ततः कुर्यात् साधनैर्न्यायतोऽर्जितैः।
अन्यायेनार्जिता पूजा निष्फला मुनिसत्तम।।31।।

इसके बाद न्याय से अर्जित साधनों से बाह्य-पूजा करें। अन्याय से उपार्जित साधनों से करने पर वह पूजा निष्फल हो जाती है।

अगस्त्य उवाच

बाह्यपूजां पुनर्वक्ष्ये सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
स्वगृहे शुद्ध भूभागे विलिप्ते गोमयाम्बुना।।32।।
सुवितानसमायुक्ते पुष्पाद्यैः समलङ्कृते।
गीतवाद्यैस्तु नृत्यैश्च सर्वत्र सुमनोहरैः।।33।।
शुद्धासने समासीन उपचारैः स्वशक्तितः।

अगस्त्य बोले– हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! अब बाह्य-पूजा का स्वरूप कहता हूँ। अपने घर में गाय के गोबर और जल से लीपे हुए सुन्दर चँदोवा टाँगे हुए फूल आदि से सजे हुए पवित्र स्थान पर गाना-बजाना और नाच-गान से मनोरम कर शुद्ध आसन पर अवस्थित अपनी शक्ति के अनुरूप सामग्रियों से बाह्य पूजा करें।

चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूरकुङ्कुमादिभिः ।।34।।
हिमाम्बुना सुसंमृष्टैः पूजा कार्या सदा मुने।

चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर, रोली आदि से जो बर्फ़ के जल में घोला गया हो, उससे पूजा करें।

करवीरैश्च संफुल्लैः श्वेतरक्तैः सुगन्धिभिः।।35।।
पुन्नागैश्चम्पकैश्चैव बकुलैः शतपत्रकैः।
जातीभिर्मल्लिकाभिश्च कह्लारैः कमलैरपि।।36।।
पाटलैः केतकीपुष्पैः पूजयेद् रघुनन्दनम्।

खिले हुए करवीर, जो सफेद या लाल रंग के हों, नागकेसर, चम्पा, बकुल, शतपत्र, जाती, मल्लिका, श्वेतकमल, रक्तकमल, गुलाब और केतकी फूलों से श्रीराम की पूजा करें।

वैष्णवेषु च सर्वेषु शङ्खपूजा प्रयत्नतः।।37।।
कुर्यात् त्रिकालं विधिवद् विधिज्ञः साधकोत्तमः।

विनैव शङ्खपूजां यो वैष्णवः पूजयेद्धरिम्।।38।।
पूजाफलं नैवाप्नोति सम्यग्वा पूजकोऽपि सः।

सभी वैष्णव-पूजाओं में तीनों कालों में, विधानों के ज्ञाता श्रेष्ठ साधक विधानपूर्वक प्रयत्न कर शंख पूजा करें। शंख की पूजा किए विना जो वैष्णव श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे अच्छी तरह पूजा करनेवाले भी उस पूजा का फल नहीं प्राप्त करते हैं।

धूपैश्च बहुभिः काम्यैः सुगन्धैर्गुग्गुलोद्भवैः।।39।।
अर्चयेत् परया भक्त्या रघुनाथमनन्यधीः।

अपनी कामना के अनुसार अनेक प्रकार के धूपों से, सुगन्धित गुगगुल के धूप से परम भक्तिपूर्वक एकाग्रचित होकर श्रीरघुनाथ की पूजा करें।

स्नेहसंयुक्तविपुलवर्तिकाभिरनेकधा ।।40।।
आरार्तिभिरनेकाभिः स्थापिताभिः प्रयत्नतः।
पद्मस्वस्तिकरूपेण हंसाकारेण चामरम्।।41।।
भ्रामयेद् रघुनाथस्य पुरस्तात् प्रयतोऽन्वहम्।

तेल, घी आदि से युक्त बड़ी बातियों वाले अनेक प्रकार से अनेक आरतियों से जो प्रयत्नपूर्वक स्थापित की गयी हैं, कमल, स्वस्तिक या हंस की आकृति बनाते हुए श्रीरघुनाथ के समक्ष नियम से चाँवर प्रतिदिन घुमावें।

नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपूरितं पुरतः स्थितम्।।42।।
सूपापूपामृतोपेतं पायसाद्यं सशर्क्करम्।
बहूपदंशसंशोभि सघृतं सुदधिप्रियम्।।43।।
निवेदयेत् प्रयत्नेन शोभिते शुद्धमुज्ज्वलम्।

भक्ष्य, भोज्य आदि अनेक पदार्थ जैसे, दाल, पूआ, मधु के साथ शक्कर डाला हुआ पायस आदि, अनेक प्रकार की बड़ियों, घी तथा दही से सुसज्जित नैवेद्य जो शुद्ध और उज्ज्वल हो प्रयत्नपूर्वक निवेदित करें।

कर्पूरशकलैर्युक्तं नागवल्लीदलान्वितम्।।44।।
सुधाबिन्दुसमायुक्तं पूगीफलमनोहरम्।
ताम्बूलं रघुनाथस्य दत्वा कामानवाप्नुयात्।।45।।

कर्पूर खण्ड, चूना से युक्त, सुपारी से सुसज्जित कर पान का पत्ता लगाकर ताम्बूल श्रीराम को समर्पित कर सभी कामनाएँ प्राप्त करते हैं।

पूर्वोक्तमेवं संक्षेपाद् विधानं गदितं मुने।
सर्वेषां राममन्त्राणामेवमेवेरितं पुनः।।46।।
त्रिकालमेककालं वा एवं यः पूजयेत्सदा।
सार्वभौमश्चिरं भूत्वा राजा एव भवेदिह।।47।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! पूर्व में कहे गये विधानों को ही यहाँ मैंने संक्षेप में कहा है। सभी राम-मन्त्रों के विधान इसी प्रकार के कहे गये हैं। जो तीनों कालों में या एक काल में प्रतिदिन पूजा करते हैं, वे बहुत दिनों तक इस संसार में एकच्छत्र राजा होते ही हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रान्तरवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।25।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

सर्वानुष्ठानसारं ते सर्वदानोत्तमोत्तमः।
रहस्यं कथयिष्यामि सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।।1।।

अगस्त्य बोले– हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! सभी प्रकार के अनुष्ठानों में से सबसे महत्त्वपूर्ण और सभी दानों में उत्तम दान का रहस्य मैं बतलाता हूँ।

[1]चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ।
उदये गुरुगौरांशोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके।।2।।
मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटिकाह्वये।
आविरासीत् सकलया कौशल्यायां परः पुमान्।।3।।

हे ब्राह्मण! चैत्र मास के शुल्कपक्ष की नवमी तिथि को पुण्य दिन में जब पुनर्वसु नक्षत्र था, गुरु और चन्द्रमा का उदय हुआ था तथा पाँच ग्रह अपनी अपनी उच्च राशि पर स्थित थे, सूर्य मेष राशि में स्थित थे और उस समय कर्क लग्न था, ऐसे समय में अपनी कला के साथ परम पुरुष श्रीराम का प्राकट्य कौशल्या के गर्भ से हुआ।

1. श्लोक संख्या 2-4 तक केवल 'क' में उपलब्ध।

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे-
राविर्भूतमभूतपूर्वविभवं यत्किंचिदेकं महः।।4।।

जब पाँच ग्रह अपनी उच्च राशि में थे, बृहस्पति चन्द्रमा के साथ थे, नवमी तिथि थी, पुनर्वसु नक्षत्र था, सूर्य मेष राशि में थे, तब कर्क लग्न में राक्षस रूपी समिधाओं को जलाने के लिए अयोध्या रूपी पवित्र अरणि से एक अभूतपूर्व राम नामक तेज उत्पन्न हुआ।

(टिप्पणी : पाण्डुलिपि ग. में 'चैत्रे नवम्यां' इत्यादि से 'तु शुक्लपक्षे' तक अनुपलब्ध है। किन्तु पाँचवें श्लोक का अंश 'रघूत्तमः।' उपलब्ध होने कारण उपर्युक्त अंश को भ्रम से खण्डित माना जाना चाहिए, प्रक्षेप नहीं। अतः मैंने इस अंश को मूल पाठ माना है। किन्तु श्लोक संख्या 4 भोजराज कृत चम्पूरामायण' में 1।29 पर भी उपलब्ध है।)

चैत्रे मासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः।
प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्मन् परब्रह्मैव केवलम्।।5।।
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतन्तदा[1]।
ततो जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि।।6।।
प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु सन्ध्यादि सकलाः क्रियाः।
सम्पूज्य विधिवद् रामं भक्त्या वित्तानुसारतः।।7।।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
गो-भू-तिल-हिरण्याद्यैः स्वर्णालङ्करणैस्तथा।।8।।
रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत् परया मुदा।
एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्।।9।।
अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बहून्यपि।
भस्मीकृत्य व्रजत्येव श्रीविष्णोः परमं पदम्।।10।।

चैत्र मास की नवमी तिथि को शुक्लपक्ष में परब्रह्म श्रीराम प्राचीन काल में अवतरित हुए। उस दिन उपवास का व्रत करना चाहिए। इसके बाद श्रीराम का ध्यान करते हुए जागरण करना चाहिए। प्रातःकाल दशमी में सन्ध्या आदि

1. ग. व्रतं सदा।

सभी कृत्य कर श्रीराम की विधिवत् पूजा भक्ति के साथ अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार करें। भक्तिपूर्वक ब्राह्मण भोजन करावें तथा दान-दक्षिणा देकर उन्हें सन्तुष्ट करें। परम प्रसन्न होकर यत्नपूर्वक श्रीराम के भक्तों को सन्तुष्ट करें। ऐसा करने से अनेक जन्मों में उपजे अनेक पाप को भस्म कर वह व्यक्ति विष्णु का परम धाम प्राप्त करता है।

सर्वेषामप्ययं धर्मो मुक्तिभुक्त्यैकसाधनः।
अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्।।11।।
पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः।

यह सबके लिए धर्म है, जो भोग और मोक्ष का निश्चित साधन है। चाहे वह अपवित्र हो या सबसे बड़ा पापी क्यों न हो, यह श्रेष्ठ व्रत कर सभी प्राणियों के बीच जैसे श्रीराम पूज्य हैं वैसे वह भी पूज्य हो जाता है।

यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते स तु नराधमः।।12।।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र शंसयः।
त्रैलोक्यपापमश्नाति स्वधर्मो निष्फलो भवेत्।।13।।
यस्तु रामस्य नवमीमनादृत्य नराधमः।
अश्नीयान्नरकं गच्छेद्यावदाचन्द्रतारकम्।।14।।
अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वोत्तमोत्तमम्।
व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग् भवेत्।।15।।
सर्वव्रतस्य प्रीत्यर्थमिदं श्रीरामव्रतं चरेत्।
रहस्यकृतपापानि प्रख्यातानि बहून्यपि।
महान्ति विप्रणश्यन्ति श्रीरामनवमीव्रतात्।।16।।

जो रामनवमी के दिन भोजन करते हैं, वे मनुष्यों में अधम बन जाते हैं और कुम्भीपाक नरक का ताप भोगते हैं, इसमें सन्देहं नहीं है। तीनों लोकों में पाप के भागी होते हैं, उनका अपना धर्म निष्फल हो जाता है। जो नराधम श्रीराम की नवमी तिथि का अनादर कर भोजन कर लेते हैं वे चन्द्रमा और नक्षत्रों के विद्यमान रहने तक नरक का भोग करते हैं। सभी व्रतों में उत्तम रामनवमी का व्रत न कर जो दूसरे व्रत करते हैं, उन्हें उन अन्य व्रतों का फल नहीं मिलता सभी व्रतों की प्रीति के लिए श्रीराम का व्रत करना चाहिए। इसे करने से गुप्त रूप से या प्रकट रूप से किये गये सभी महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

एकामपि नरो भक्त्या श्रीरामनवमीं मुने।[1]
उपोष्य कृतकृत्यः स्यात्[2] सर्वपापैः प्रमुच्यते।।17।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! जो नर एक बार भी भक्तिपूर्वक श्रीरामनवमी व्रत कर लेते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं और सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

नरो रामनवम्यान्तु श्रीरामप्रतिमाप्रदः।
विधानेन मुनिश्रेष्ठ सुमुक्तो नात्र शंसयः।।18।।

रामनवमी में श्रीराम की मूर्ति का दान विधिपूर्वक करनेवाले भलीभाँति मुक्त हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रीराम प्रतिमादानं विधानं च कथं मुने।
कथयस्व प्रसादेन मयि भक्तस्य विस्तरात्।।19।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे मुनि अगस्त्य! श्रीराम की प्रतिमा दान करने का क्या विधान है? मुझपर प्रसन्न होकर भक्तों की सुविधा के लिए विस्तार से कहें।

अगस्त्य उवाच

कथयिष्यामि ते ब्रह्मन् प्रतिमादानमुत्तमम्।
विधानं चापि यत्नेन यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः।।20।।

अगस्त्य बोले- हे ब्राह्मण सुतीक्ष्ण! तुम विष्णु के श्रेष्ठ भक्त हो, अतः मैं प्रतिमा-दान की विधि यत्नपूर्वक कहूँगा।

अष्टम्यां चैत्रमासस्य शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः।
दन्तधावनपूर्वन्तु प्रातः स्नायाद्यथाविधि।।21।।

चैत्र मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को जितेन्द्रिय होकर पहले दातून कर प्रातःकाल विधानपूर्वक स्नान करें।

नद्यां तडागे कूपे वा ह्रदे प्रस्रवणेऽपि वा।
ततः सन्ध्यादिकं कुर्यात् संस्मरन् राघवं हृदि।।22।।
गृहमागत्य विप्रेन्द्र कुर्यादौपासनादिकम्।

नदी, तालाब, कुआँ, झील या जलप्रपात में स्नान करें। तब हृदय में श्रीराम का ध्यान करते हुए सन्ध्यावंदन आदि करें। इसके बाद घर आकर दैनिक उपासना करें।

---

1. ग. श्रीरामनवमीव्रतात्। 2. ग. भक्त्या यः कुर्यात् ।

दान्तं कुटुम्बिनं विप्रं वेदशास्त्ररतं सदा।।23।।
श्रीरामपूजानिरतं सुशीलं दम्भवर्जितम्।
विधिज्ञं राममन्त्राणां राममन्त्रैकसाधकम्।।24।।
आहूय भक्त्या सम्पूज्य वृणुयात् श्रद्धयान्वितः।
श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम।
तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽपि त्वमेव मे।।25।।

तब उदार विचार वाले, परिवार वाले और जो वेद और शास्त्र में रमे रहते हों, श्रीराम की पूजा करते हों, सुशील, अहंकार रहित हों, श्रीराम के मन्त्रों की विधानों का ज्ञान रखते हों तथा श्रीराम के मन्त्र को सिद्ध किए हों, ऐसे ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक आमन्त्रित कर श्रद्धा के साथ उनका वरण करें- 'हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं श्रीराम की प्रतिमा का दान करूँगा। इस अनुष्ठान में आप आचार्य हों तथा मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मेरे लिए श्रीराम भी आप ही हैं।'

इत्युक्त्वापूज्य तं विप्रं स्नापयित्वा ततः स्वयम्।
तैलेनाभ्यङ्गमास्नायात् चिन्तयन् राघवं हृदि।।26।।

ऐसा कहकर उस विप्र की पूजा कर उन्हें स्नान कराकर फिर हृदय में श्रीराम का ध्यान करते हुए तेल लगाकर स्वयं स्नान करें।

श्वेताम्बरधरः श्वेतगन्धमाल्यानि धारयेत्।
अर्चितो भूषितश्चैव कृतमाध्याह्निकक्रियः।।27।।
आचार्यं भोजयेत् पश्चात् सात्त्विकान्नैः सुविस्तरैः।
भुञ्जीत स्वयमप्येवं हृदि राममनुस्मरन्।।28।।

श्वेत वस्त्र पहनकर श्वेत एवं सुगन्धित माला धारण करें। अर्चित और भूषित होकर मध्याह्नकालिक कृत्यों को सम्पन्न कर अनेक प्रकार के सात्त्विक भोज्य पदार्थों से आचार्य को भोजन कराकर स्वयं भी हृदय में श्रीराम का स्मरण करते हुए भोजन करें।

एकभुक्तव्रती तत्र सदाचारो जितेन्द्रियः।
वसेत् स्वयं तथैकान्ते श्रीरामार्पितमानसः।।29।।
शृण्वन् रामकथां दिव्यामहःशेषं नयेन्मुने।

एकभुक्त व्रत करते हुए सदाचारपूर्वक जितेन्द्रिय होकर एकान्त में रहते हुए श्रीराम के प्रति मन समर्पित कर श्रीराम की दिव्य कथा सुनते हुए दिन का शेष भाग व्यतीत करें।

सायं सन्ध्यादिकाः कुर्यात् सदाराममनुस्मरन्।।30।।
आचार्य सहितो रात्रावधःशायी जितेन्द्रियः।

सायंकाल श्रीराम का स्मरण करते हुए सन्ध्यावंदन आदि कृत्य करें तथा रात्रि में आचार्य के साथ भूमि पर जितेन्द्रिय होकर शयन करें।

ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वा सन्ध्यां विधाय च।।31।।
प्रातः सर्वाणि कर्माणि शीघ्रमेव समर्पयेत्।

इसके बाद प्रातःकाल उठकर स्नान और सन्ध्यावंदन कर सभी कर्मों को शीघ्र सम्पन्न करें।

चतुर्द्वारं पताकाढ्यं सुवितानं सुतोरणम्।।32।।
मनोरमं महोत्सेधं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतम्।।
शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलङ्कृतम्।
गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलङ्कृतम्।।35।।
गदापद्माङ्गदैश्चैव पश्चिमे समलङ्कृतम्।
पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरे समलङ्कृतम्।।36।।
मध्ये हस्तश्चतुष्काद्ये वेदिकायुक्तमायतम्।
प्रविश्य गीतवृत्तैश्च वाद्यैश्चापि हि संयुतम्।।37।।

तब ऐसे विशाल गृह में प्रवेश करें, जहाँ चार हाथ की वेदी बनी हुई हो, चारो ओर द्वार हों, पताकाएँ फहरा रही हों, चन्दोवा टँगे हों, वंदनबार लगे हों, सुन्दर, विशाल और फूल आदि से सजे हों। इस भवन का पूर्व द्वार शंख, चक्र एवं हनुमान् से अलंकृत हों, दक्षिण द्वार पर गरुड, शार्ङ्ग एवं बाण, पश्चिम द्वार पर गदा, पद्म एवं अंगद हों तथा पद्म, स्वस्तिक एवं नील उत्तरी द्वार पर हों। बीच में चार हाथ लम्बाई और चौड़ाई की वेदी बनी हुई है।

पुण्याहं वाचयित्वात्र विद्वद्भिः प्रीतमानसैः।
ततः संकल्पयेद् देवं राममेव स्मरन् मुने।।38।।

अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः।
उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि।।39।।
इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां सुप्रयत्नतः।
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते।।40।।
प्रीतो रामो हरत्वाशु पापनि सुबहूनि मे।
अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च।।41।।

इस घर में गाते-बजाते लोगों के साथ प्रवेश कर प्रसन्नचित्त विद्वानों द्वारा पुण्याहवाचन करावें। इसके बाद भगवान् श्रीराम का स्मरण करते हुए इस प्रकार संकल्प करें:-

'इस रामनवमी में मैं श्रीराम की आराधना करता हुआ आठो पहर उपवास कर विधिपूर्वक श्रीराम की पूजा कर श्रीराम की इस स्वर्णमयी प्रतिमा को प्रयत्नपूर्वक श्रीराम की प्रीति के लिए श्रीराम के भक्त को दान करता हूँ। इससे प्रसन्न श्रीराम मेरे अनेक महान् पापों को हर लें, जो मेरे द्वारा अनेक जन्मों में बार बार किए गये हैं।'

ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः।
निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम्।।42।।
विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामते।
वामेनाधः करेणाराद् देवीमालिङ्ग्य संस्थिताम्।।43।।
सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते।
पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवन्नरः।।44।।
मूलमन्त्रेण नियतो न्यासपूर्वमतन्द्रितः।
दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणन्ततः।।45।।

इसके बाद एक पल सोना से निर्मित श्रीराम की प्रतिमा लें, जिसमें दो भुजाएँ हों, वाम भाग में जानकीजी हों, दक्षिण हाथ ज्ञान मुद्रा में हों और वायें हाथ से देवी का आलिंगन दूर से किए हो। ऐसी प्रतिमा को दो पल सोना से निर्मित सिंहासन पर विराजित करें पञ्चामृत से स्नान कराकर पूर्व में न्यास कर मूलमन्त्र से नियमपूर्वक विना आलस्य किए हुए प्रतिमा-पूजन करें। दिन में इस प्रकार विधानपूर्वक कृत्य सम्पन्न कर रात्रि में जागरण करें।

दिव्यां रामकथामुक्त्वा रामभक्तैः समन्वितः।
नृत्योत्सवादिभिश्चैव रामस्तोत्रैरनेकधा।।46।।
यामाष्टकं यथान्यायं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
सकर्पूरागरुश्चैव कह्लाराद्यैरनेकधा।47।।
पूजयेद् विधिवद् भक्त्या दिवारात्रं नयेद् बुधः।

रात्रि में श्रीराम के भक्तों के साथ श्रीराम की दिव्यकथा कहकर, नृत्य, उत्सव आदि तथा अनेक प्रकार के श्रीराम-स्तोत्रों से आठो पहर विधान के साथ चन्दन, फूल, अक्षत आदि सामग्रियों से कपूर, अगर, और कमल आदि फूलों से अनेक प्रकार से पूजन करें। इस प्रकार श्रीराम की विधिवत् भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए दिन-रात व्यतीत करें।

[यहाँ पाण्डुलिपि क. में चन्दन के निर्माण की विधि एवं प्रभेद मूल पाठ के साथ उपलब्ध है। यह अंश ग. एवं घ. में नहीं होने के कारण इसे टिप्पणी के रूप में रखा गया है–

(सकर्पूरागरुश्चैव) कस्तूरीचन्दनन्तथा।।47।।
कङ्कोलञ्च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः।
कस्तूरिकायाः द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च।
कुङ्कमस्य त्रयश्चैव शशिनः स्याच्चतुस्समम्।।48।।
कुङ्कमं केशरञ्चैव शशिकर्प्पूर एव च।
कर्पूरचन्दनं दर्पं कुङ्कमं च समांशकम्।।49।।
सर्वगन्धमितिंप्रोक्तं समस्तैश्च सुवल्लभम्।

कपूर, अगरु, कस्तूरी, चन्दन और कंकोल इन्हें मिलाकर यक्षकदम बनाया जाता है। दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग रोली और चार भाग श्वेतकर्पूर मिलाकर 'चतुस्सम' नामक सुगन्धित द्रव्य होता है। अथवा कुंकुम, केसर, श्वेतकर्पूर, ये तीनों मिश्रित करें। अथवा कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी और रोली समान मात्रा में मिलायें, इसे 'सर्वगन्ध' कहते हैं।]

ततः प्रातः समुत्थाय स्नान-सन्ध्यादिकाः क्रियाः।।48।।
समाप्य विधिवद्रामं पूजयेत् पूर्ववन्मुने।

तब प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या आदि सभी कृत्य समाप्त कर विधिवत् पूर्वोक्त रीति से श्रीराम की पूजा करें।

ततो होमं प्रकुर्व्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।।49।।
पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा यथाविधि।
लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरन्ततः।।50।।
साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः।।51।।

इसके बाद मन्त्रज्ञानी मूलमन्त्र से पूर्वोक्त हवन कुण्ड में अथवा स्थण्डिल पर होम करें। यह होम विधानपूर्वक लौकिक अग्नि में श्रीराम का स्मरण करते हुए घृत युक्त पायस से कम से कम एक सौ आठ बार करें।

ततो भक्त्या तु संतोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने।
कुण्डलाभ्यां सरत्नाभ्यामङ्गुलीयैरनेकधा।।52।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्विचित्रैः सुमनोहरैः।
ततो रामं स्मरन् दद्यादिदं मन्त्रमुदीरयन्।।55।।
इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्।
चित्रवस्त्रयुगाच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते।।56।।
श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः।
प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहून्यपि।।57।।
अनेक जन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! तब कुण्डल, रत्न, अंगूठी आदि अनेक वस्तुओं से आचार्य को सन्तुष्ट कर चन्दन, फूल, अक्षत आदि से आराधना कर रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र समर्पित कर श्रीराम का स्मरण करते हुए इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करें- "हे आचार्य! आप श्रीराम स्वरूप हैं। मैं भी श्रीराम स्वरूप हूँ। रंग-बिरंगा एक जोड़ा वस्त्र में छिपी हुई तथा अलंकृत श्रीराम की यह स्वर्णमयी प्रतिमा श्रीराम की प्रीति के लिए आपको दे रहा हूँ। इससे श्रीराम प्रसन्न हों तथा अनेक जन्मों में अर्जित तथा बार बार किए गये मेरे महापाप श्रीराम हर लें।"

इति दत्वा विधानेन दद्याद् वै दक्षिणान्तरम्।।58।।
अन्येभ्यश्च यथान्यायं गो-हिरण्यादिशक्तितः।
दद्याद् वासोयुगं धान्यं यथा विभवमादृतः।।59।।

इस प्रकार विधानपूर्वक दान कर दूसरी दक्षिणा करें। दूसरे लोगों को भी उचित रीति से गाय, स्वर्ण आदि शक्ति के अनुसार दान करें। जोड़ा वस्त्र, धन-सम्पत्ति भी विभवानुसार दान करें।

ब्राह्मणैः सह भुञ्जीत तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।60।।
तुलापुरुषदानादिफलं प्राप्नोति मानवः।
अनेकजन्मसंसिद्धपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्।।61।।
बहुना किमिहोक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये सूर्यपर्वण्यशेषतः।।62।।
तुलापुरुषदानादि कृते तत् लभ्यते फलम्।
तत्फलं लभ्यते मर्त्यैर्दानेनानेन सुव्रत।।63।।

इसके बाद ब्राह्मणों के साथ भोजन करें और उन्हें दक्षिणा भी दें। इस प्रकार प्रतिमा-दान करने से वह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। तुलापुरुष दान आदि का फल वह व्यक्ति पाता है। अनेक जन्मों के संचित पापों से मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्र में, पुण्य क्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय अशेष रूप से तुलापुरुष-दान (पुरुष के भार के बराबर स्वर्णदान) का जो फल मिलता है, वही मानव इस दान से पाता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामव्रतकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।26।।

विशेष

(इस अध्याय में श्लोक संख्या 55 के बाद निम्नलिखित अंश केवल पाण्डुलिपि क. में उपलब्ध है, किन्तु पूर्वापर अनन्वय तथा अकाण्डप्रथन के कारण यह अंश प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। ऐसी सम्भावना है कि किसी लिपिकार ने उक्त स्थल पर पाद-टिप्पणी के रूप में अनुकल्पों का उल्लेख किया होगा, जिसे प्रतिलिपिकार ने खण्डित मूल अंश समझकर कालान्तर में पाठ के साथ जोड़ दिया होगा। **इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्**। यह पंक्ति दो बार मिलने के कारण इस स्थिति की सम्भावना बढ़ जाती है। इस अंश को यहाँ अनुवाद के साथ दिया जा रहा है–

इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्।

इस स्वर्णमयी प्रतिमा को जो अलंकृत है-------

अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत्।।56।।

रुद्रबीजं परं पूतं यतस्तस्यैव सर्वदा।

सभी प्रकार के रत्नों के अभाव में सभी स्थलों पर सुवर्ण का व्यवहार करें। या रुद्राक्ष परम पवित्र है, उसी का व्यवहार करें।

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।

सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते।।57।।

सुवर्ण का दान श्रेष्ठ है और सुवर्ण दक्षिणा भी श्रेष्ठ है। सभी दानों में सुवर्ण दक्षिणा मानी जाती है।

श्रद्धापूतः शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् सदक्षिणम्।

अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।58।।

श्रद्धा से पवित्र, पवित्र, मृदु स्वभाव वाले व्यक्ति दक्षिणा के साथ दान करें। विना दक्षिणा का जो दान किया जाता है, वह सब निष्फल होता है

देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत्।

अनुक्ते दक्षिणादाने दशांशं वापि शक्तितः।।59।।

दान की गयी वस्तु की तेहाई दक्षिणा रखें। जहाँ दक्षिणा का उल्लेख न हो वहाँ दशांश अथवा शक्ति के अनुसार करें।]

सप्तविंशोऽध्यायः

सुतीक्षण उवाच

प्रायेण हि नराः सर्वे दरिद्राः कृपणाः मुने।

असामर्थ्याद् विधानेऽस्मिन् कथन्तेषां विधिः प्रभो।।1।।

सुतीक्षण ने पूछा– हे मुनि अगस्त्य! सभी मनुष्य प्रायः दरिद्र और कृपण होते हैं। यदि इस विधान का सामर्थ्य उनमें न हो, तब वे कैसे आराधना करेंगे।

अगस्त्य उवाच

अशक्तो यो महाभाग तस्य वित्तानुसारतः।

पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।।2।।

वित्तशाठ्यमकृत्त्वैव कुर्यादितद् व्रतं मुने।

अगस्त्य बोले–हे महाभाग! जो सामर्थ्यहीन हों, वे धन के अनुसार पल का आधा, चौथाई, या अष्टमांश सुवर्ण से निर्मित प्रतिमा का दान करें। सम्पत्ति रहे तो विना छुपाये तथा न रहे, तो भी दिखावटी भी नहीं करते हुए ही यह व्रत करें।

यदि घोरतरादृष्टं यातनां[1] नेहते क्वचित्।।3।।
अकिंचनोऽपि नियतं उपोष्य नवमीदिनम्।
कृत्वा जागरणं भक्त्या रामभक्तैः समन्वितः।।4।।
स्मरन् रामं धियाँ भक्त्या पूजयेद् विधिवन्मुने।

यदि भाग्य अत्यन्त कठोर हो, फिर भी वे कष्ट का अनुभव न करें। जिसके पास कुछ भी नहीं हो, वह भी नियमपूर्वक नवमी में उपवास कर श्रीराम के भक्तों के साथ रात में जागरण कर श्रीराम का स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक पूजा करें।

जपन् राममर्नुमायारमानङ्गसमन्वितम्।।5।।
एकाक्षरं वा विधिवत्सर्वन्यासकृतोन्नतिः।

विधानपूर्वक सभी प्रकार के न्यासों से उन्नत होकर साधक श्रीराम के मन्त्र को माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) और कामबीज (क्लीं) से संयुक्त कर अथवा एकाक्षर मन्त्र (रां) का जप करें।

प्रातः स्नात्वा च विधिवत् कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः।।6।।
गो-भू-तिल-हिरण्यादि दद्याद् वित्तानुसारतः।
श्रीरामचन्द्रभक्तेभ्यो विद्वद्भ्यः श्रद्धयान्वितः।।17।।

प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान और सन्ध्यावंदन आदि क्रियाएँ कर धन-सम्पत्ति के अनुसार गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि श्रीराम के भक्त विद्वानों को श्रद्धापूर्वक दान करें।

पारणं च प्रकुर्वीत ब्राह्मणैः सह भक्तितः।
एवं यः कुरुते भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।।8।।

ब्राह्मणों के साथ भक्तिपूर्वक पारणा करें। ऐसा जो करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते।।9।।

1. ग. पापानां।

श्रीरामनवमी का दिन आने पर जो मूर्ख मनुष्य उपवास नहीं करते हैं, वे कुम्भीपाक नरक में पचते हैं।

यत्किंचिद् राममुद्दिश्य नो ददाति स्वशक्तितः।
रौरवेषु स मूढात्मा पच्यते नात्र संशयः।।10।।

अपनी शक्ति के अनुसार जो कुछ श्रीराम को लक्ष्य कर अपनी शक्ति के अनुसार दान नहीं करता है, वह मूर्ख रौरव नरक में पचता है, इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

यामाष्टकेषु पूजा वै त्वया प्रोक्ता महामुने।
मूलमन्त्रेण चेत्युक्तं तत्कथं वद सुव्रत।11।।

हे महामुनि सुतीक्ष्ण! आपने आठो यामों में पूजा की जो विधि बतलायी है और यह भी कहा है कि मूलमन्त्र से यह पूजा की जानी चाहिए। हे सुव्रत! अगस्त्य अब बतलाइये कि मूलमन्त्र से कैसे पूजा होगी?

अगस्त्य उवाच

सर्वेषां राममन्त्राणां मन्त्रराजं षडक्षरम्।
तारकं ब्रह्म वेदोक्तं तेन पूजा प्रशस्यते।।12।।

(अगस्त्य बोले–) सभी राम-मन्त्रों में छह अक्षरों का मन्त्रराज वेद में तारक ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। इससे पूजा प्रशस्त होती है।

दशमाध्यायविधिना[1] पूजा कार्या प्रयत्नतः।
द्वारपीठाङ्गदेवानांमावृतीनां तथैव च।।13।।
आदावेव प्रकुर्वीत देवस्य प्रतिमां ततः।।
उपचारैः षोडशभिः पूजां कुर्याद्यथाविधि।।14।।

प्रयत्नपूर्वक दशम अध्याय में उक्त विधि से षोडशोपचार से द्वार देवता, पीठ देवता, अंग देवता तथा अन्य आवरण-देवताओं की पूजा विधान से करनी चाहिए।

आवाहनं स्थापनं च संनिधापनमेव च।
संनिरोधनमेव स्यादवगुण्ठनमञ्जसा।।15।।
तत्तन्मुद्राभिरेवं स्याद् देवं संप्रार्थ्य भक्तितः।
शङ्खपूजां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना मुने।।16।।

1. ग. एवं घ. दशाक्षरविधानेन।

देवता का आवाहन, स्थापन, संनिधापन, संनिरोधन अवगुंठन उन उन मुद्राओं से करें तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रार्थना कर शंखपूजा पूर्व में कही गयी विधि से करें।

कलशं वामभागस्थं पूजाद्रव्याणि चादरात्।
पात्रं च प्रोक्षयेद् भक्त्या चात्मानं मन्त्रमुच्चरन्।।17।।

वाम भाग में स्थित कलश, पूजा-सामग्रियों, पात्रों एवं स्वयं का प्रोक्षण भक्तिपूर्वक मन्त्र का उच्चारण करते हुए करें।

प्रतिमां शंखपूजां च कुर्यादेवमनुस्मरन्।
पात्रासादनमप्येवं कुर्याद् देवमतन्द्रितः।।18।।

प्रतिमा का प्रोक्षण तथा शंख की पूजा भी इसी प्रकार श्रीराम का स्मरण करते हुए करें तथा वाम भाग में पात्रों को यथास्थान रखने का कार्य भी आलस्य छोड़कर इसी प्रकार करें।

पीताम्बराणि देवाय प्रार्थितान्यर्पयेत् सुधीः।
स्वर्णयज्ञोपवीतानि दद्याद् देवाय शक्तितः।।19।।
नानारत्नविचित्राणि दद्यादाभरणानि च।

विद्वान् यजमान पीले वस्त्रों की प्रार्थना कर देवता को अर्पित करे। स्नर्ण-निर्मित यज्ञोपवीत आदि भी देवता को समर्पित करे। नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए आभूषण भी समर्पित करें।

हिमाम्बुघृष्टरुचिरघनसारसमन्वितम् ।।20।।
गन्धं दद्यात्प्रयत्नेन चागरुं च सकुङ्कुमम्।
मूलमन्त्रेण सकलानुपचारान्प्रकल्पयेत्।।21।।

बर्फ के पानी में घिसा हुआ सुन्दर कपूर, कुंकुम तथा अगर से युक्त गन्ध समर्पित करें। सभी उपचार मूलमन्त्र से कल्पित करें।

कह्लारकेतकीजातीपुन्नागाद्यैः प्रपूजयेत्।
चम्पकैः शतपत्रैश्च सुगन्धैः सुमनोहरैः।।22।।

सुगन्धित एवं सुन्दर कमल, केतकी, जाती, नागकेसर, चम्पा, शतपत्र के पुष्पों से पूजन करें।

घण्टां च वादयन् धूपं दीपं चास्मै समर्पयेत्।
भक्ष्यभोज्यादिकं भक्त्या देवाय विधिनार्पयेत्।।23।।

घण्टा बजाते हुए धूप, दीप, भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थ देवता को विधिपूर्वक समर्पित करें।

एवं सोपस्करं देवं दत्वा पापैः प्रमुच्यते।
जन्मकोटिकृतैः घोरैर्नानारूपैः सुदारुणैः।।24।।
विमुक्तस्तत्क्षणादेव राम एव भवेन्मुने।

इस प्रकार उपकरणों के साथ देवता को समर्पित कर अनेक प्रकार के दारुण, करोड़ों जन्मो में किये गये पापों से वह उसी समय मुक्त होकर श्रीराम का स्वरूप प्राप्त कर लेता है।

श्रद्दधानस्य ते प्रोक्तं श्रीरामनवमीव्रतम्।।25।।
सर्वलोकहितार्थाय पवित्रं पापनाशनम्।

हे मुनि! आप श्रद्धावान् हैं, इसलिए मैंने सभी लोगों के कल्याण के लिए पवित्र और पापों का नाश करनेवाले श्रीरामनवमी व्रत के बारे में बतलाया।

लौहेन निर्मितं चापि शिलया दारुणापि वा।।26।।
येन केन प्रकारेण यस्मै कस्मै क्रमान्मुने।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु दत्वा विप्राय भक्तितः।।27।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेदेव न संशयः।

लोहा, पत्थर अथवा काष्ठ की बनी हुई प्रतिमा जिस किसी भी प्रकार से जिस किसी ब्राह्मण को विधानपूर्वक चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को दान कर सभी पापों से मुक्त होता ही है, इसमें सन्देह नहीं।

तस्मिन् दिने महापुण्ये स्नानदानादिकं मुने।।28।।
कृतं सर्वप्रयत्नेन यत्किंचिदपि भक्तितः।
महादानादितुल्यं स्याद्रामोद्देशेन कल्पितम्।
वित्तशाठ्यमकृत्वैव सर्वं कुर्यात् स्वशक्तितः।।

उस महान् पुण्यमय दिन में जो कुछ भी स्नान, दान आदि भक्ति एवं यत्नपूर्वक किया जाता है, वह अक्षय्य होता है। श्रीराम के उद्देश्य से जो कुछ भी किया जाता है वह महादान आदि के समान फलदायी होता है। अपनी सम्पत्ति की अनदेखी न करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार सबकुछ करना चाहिए।

तस्मिन् दिने महापुण्ये प्रातरारभ्य भक्तितः।।29।।
जपेदेकान्त आसीनो यावत्स्याद्दशमीदिनम्।

उस महापुण्यमय दिन में प्रातःकाल से आरम्भ कर एकान्त में बैठकर जबतक दशमी तिथि रहे, तबतक जप करें।

तेनैव स्यात् पुरश्चर्य्या दशम्यां भोजयेद् द्विजान्।।30।।
भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।
कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति।।31।।

उसी मन्त्र से पुरश्चरण किया जाना चाहिए, दशमी में अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थों से ब्राह्मण-भोजन करना चाहिए और शक्ति के अनुसार दक्षिणा दी जानी चाहिए। इससे वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है; उसपर श्रीराम तुरत प्रसन्न होते हैं।

तद्दिने तु नरो याति पुनरावृत्तिवर्जितः।
द्वादशाब्दशतेनापि यत्पापं नापमृज्यते।।32।।
विलयं याति तत्सर्वं श्रीरामनवमीदिने।
जपेन राममन्त्राणां योऽयं जानाति तस्य तु।।33।।

रामनवमी के दिन यह सब करने से मनुष्य पुनर्जन्म से रहित मोक्ष प्राप्त कर लेते है। बारह वर्षों में भी जो पाप नहीं कटता, वे सारे पाप श्रीरामनवमी के दिन श्रीराम के मन्त्र के जप से नष्ट होते हैं, साथ ही, जो इसे जानते हैं, उनके भी पाप नष्ट हो जाते हैं।

उपोष्य च स्मरन् रामं न्यासपूर्वमनन्यधीः।
गुरोर्लब्धमनुर्यस्तु तस्य न्यासपुरस्सरम्।।34।।
यामे यामे च विधिवद्रामपूजां समाहितः।[1]

उपवास कर श्रीराम का स्मरण करते हुए एकाग्रचित्त हो गुरु से प्राप्त मन्त्र का न्यासपूर्वक जप करना चाहिए तथा पहर-पहर पर ध्यान लगाकर विधिवत् श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

मुमुक्षवोऽपि च सदा श्रीरामनवमीव्रतम्।।35।।
[1]न त्यजन्ति सुरश्रेष्ठो देवेन्द्रोऽपि विशेषतः।

हमेशा मोक्ष की कामना करनेवाले भी श्रीरामनवमी का व्रत नहीं छोड़ते हैं। विशेष रूप से देवताओं में श्रेष्ठ देवराज इन्द्र भी रामनवमी व्रत नहीं छोड़ते हैं।

---

1. ग. यामेन विधिवत् सर्वं कुर्यात् पूजां समाहितः।

तस्मात्सर्वात्मना सर्वे कृत्वैव नवमीव्रतम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।।36।।

अतः सबलोग सभी प्रकार से नवमी व्रत करके ही सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं और सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामनवमीव्रतविधानं नाम सप्तविंशोऽध्यायः।

अष्टाविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

**चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षसहिता सा तिथिः सर्वकामदा।।1।।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका।
चैत्रशुद्धे तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।।2।।**

चैत्र मास की नवमी तिथि को स्वयं विष्णु श्रीराम के रूप में उत्पन्न हुए। पुनर्वसु नक्षत्र के साथ वह तिथि सभी कामनाएँ पूर्ण करती है। यह श्रीरामनवमी कही गयी है, जो करोड़ों सूर्यग्रहण के से अधिक पुण्यदायिनी है, यदि चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में पुनर्वसु नक्षत्र का योग रहे।

**पुनर्वस्वृक्षसंयोगः स्वल्पोऽपि यदि दृश्यते।
चैत्रशुद्धनवम्यां तु सा तिथिः सर्वकामदा।।3।।**

पुनर्वसु नक्षत्र का संयोग यदि थोड़ा भी दिखायी दे, तो चैत्र शुक्ल नवमी की वह तिथि सभी कामनाएँ पूर्ण करती है।

**अस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तितः।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवक्षयकारकम्।।4।।**

उस महापुण्यमय दिन में श्रीराम को लक्ष्य कर भक्ति से जो कुछ भी कर्म किये जाते हैं, वे पुनर्जन्म का नाश करते हैं।

**उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः।।5।।**

1. ग. यहाँ से चार चरण अनुपलब्ध।

उपवास, जागरण पितर को लक्ष्य कर तर्पण उस दिन सनातन ब्रह्म की प्राप्ति के लिए करना चाहिए।

राम एव परं ब्रह्म तद्दिने रामतोषकम्।
उपोषणं जागरणं तस्मात्कुर्याद् विशेषतः[1]।।6।।
यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद् विमूढधीः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः।।7।।
यस्तु रामनवम्यांतु नियतस्तर्पयेत् पितॄन्।
ते सर्वे तत्क्षणादेव यान्ति विष्णोः परं पदम्।।8।।

श्रीराम परब्रह्म श्रीराम को प्रसन्न करनेवाले उपवास और जागरण आदि करना चाहिए। जो मूर्ख मोहवश रामनवमी के दिन भोजन करते हैं, वह घोर कुम्भीपाक आदि नरकों में दग्घ होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो रामनवमी के दिन नियमपूर्वक पितरों का तर्पण करते हैं, वे उस समय से विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं।

यस्तु रामनवम्यां तु दद्याद् वित्तानुसारतः।
यत्किंचिदपि तत्सर्वं महादानसमं भवेत्।।9।।

जो रामनवमी के दिन अपने विभव के अनुसार जो कुछ भी दान करते हैं, उन्हें महादान के समान फल मिलता है।

यस्तु रामनवम्यां तु कुर्याद्रामव्रतं यदि।
तुलापुरुषदानादि फलं प्राप्नोति मानवः।।10।।

जो रामनवमी में श्रीराम का व्रत करता है, वह मनुष्य तुलापुरुष आदि दान का फल पाता है।

सूर्यग्रहे कुरुक्षत्रे महादानैः कृतैर्मुहुः।
यत्फलं तदवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रतात्।।11।।

कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय बार बार महादान करने का फल श्रीरामनवमी व्रत करने से मनुष्य प्राप्त करता है।

कुर्याद्रामनवम्यां तु उपोषणमतन्द्रितः।
मातुर्गर्भमवाप्नोति नैव रामो भवेत्स्वयम्।।12।।

1. ग. तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नतः।

रामनवमी के दिन आलस्य छोड़कर उपवास करे, तो वह पुनः माता का गर्भ प्राप्त नहीं करता है और श्रीराम-स्वरूप हो जाता है।

नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या रामपरायणैः[1]।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्।।13।।

श्रीराम में परायण भक्तों के द्वारा अष्टमीविद्धा नवमी का त्याग करना चाहिए और नवमी में उपवास कर दशमी में पारणा करनी चाहिए।

नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम्।
द्विभुजं कञ्जनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम्।।14।।
वसिष्ठाद्यैश्च परितो वृतं रत्नकिरीटिनम्।
सीतासंलापचतुरं दिव्यगन्धादिशोभितम्।।15।।
चापद्वयकरेणारात्[2] सेवितं लक्ष्मणेन च।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च पार्श्वयोरथ सेवितम्।।16।।
ध्यायन्ननन्यहृद्रामं द्वादशाक्षरमन्वहम्।
प्रजपेद् दीक्षितो नित्यं श्रीरामन्यासपूर्वकम्।।17।।
मन्त्रसन्ध्यां विधायैव त्रिकालं पूजयेत् सदा।।18।।

नीलकमल के समान श्यामल वर्ण वाले, पीताम्बरधारी, दो हाथों वाले, कमलनयन, दिव्य सिंहासन पर स्थित, वसिष्ठ आदि पार्षदों से चारो ओर से घिरे हुए, रत्न का मुकुट धारण करनेवाले, श्रीसीता के साथ आलाप करने में चतुर, दिव्य चन्दन आदि से शोभित दो धनुष हाथ में लिए हुए लक्ष्मण द्वारा दूर से सेवित, दोनों पार्श्वों में शत्रुघ्न और भरत से सेवित प्रभु श्रीराम का हृदय में अनन्य भाव से ध्यान करते हुए प्रतिदिन श्रीराम के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप श्रीराम का न्यास कर, मन्त्र सन्ध्या करके ही करें और तीनों कालों में हमेशा पूजा करें।

सुतीक्ष्ण उवाच

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद।
किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम।।19।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे भगवान् अगस्त्य! आप योगियों में श्रेष्ठ हैं, सभी शास्त्रों का ज्ञान रखते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं जानना चाहता हूँ कि तत्त्व क्या है? जप का परम मन्त्र क्या है ध्यान क्या है और मुक्ति का उपाय क्या है? यह सभ मुझे कहें।

1. यह श्लोक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में 'विष्णुपरायणैः' पाठान्तर के साथ उपलब्ध है।
2. ग. चापबाणकरेणारात्।

अगस्त्य उवाच

सुतीक्षण त्वं महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः।
यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शुभम्।।20।।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण! आप महान् भाग्यशाली हैं। मैं वास्तविक रूप से कहता हूँ, इसे सुनें। जो परम सत्ता है, सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों से भी ऊपर जो निर्मल और शुभ ज्योति है, वही परम तत्त्व है और मोक्षप्राप्ति का साधन भी है।

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम्।।21।।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः।
श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा।।22।।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः।

'श्रीराम' यह पद जप का परम मन्त्र है। इसे उद्धार करनेवाला तथा ब्रह्म कहा गया है। वेदज्ञानी इसे ब्रह्महत्या आदि पापों का नाशक कहते हैं। 'श्रीराम राम राम' इसे जो प्रतिदिन बोलते भी हैं, उन्हें संसार में धन-सम्पत्ति का भोग और देहान्त के बाद मोक्ष मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णमनामयम्।।23।।
अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्।।24।।

अब मैं श्रीराम को प्रणाम कर कृष्णवर्ण के पुण्यमय श्रीराम के ध्यान को कहता हूँ। अयोध्या नगर में सुन्दर रत्नमण्डप के बीच में कल्पवृक्ष की जड़ में स्थित रत्नमय शुभ सिंहासन का स्मरण करना चाहिए।

तन्मध्येष्टदलं पद्मं नानारत्नप्रवेष्टितम्।
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद् रघुनन्दनम्।।25।।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ ध्वजच्छत्रधरावुभौ।
चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं कारयेत् सुधीः।।26।।

इस मण्डप के बीच नाना प्रकार के रत्नों से जड़े अष्टदल कमल पर श्रीराम की सुवर्ण अथवा चाँदी से निर्मित प्रतिमा स्थापित करें दोनों पार्श्वों में छत्र और ध्वज धारण किए हुए भरत और शत्रुघ्न तथा दो धनुष थामे हुए लक्ष्मण की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए।

मातुरङ्कगतं रामभिन्द्रनीलसमप्रभम्।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णसमावृतम्।।27।।
भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम्।
रत्नग्रैवेयकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम् ।।28।।
रत्नकङ्कणमञ्जीरकटिसूत्रैरलंकृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम्।।29।।
सौवर्णे राजते पात्रे षट्कोणञ्च समं लिखेत्।
अलाभे बिल्वपीठे वा स्थापयेद्रघुनन्दनम्।।30।।

माता कौशल्या की गोद में स्थित, नीलम के समान कान्ति वाले, कोमल अंगों वाले, विशाल आँखों वाले, बिजली के समान आभा से घिरे हुए, करोड़ों सूर्य के समान, मुकुटधारी, रत्नमय हार, बाजूबंद तथा रत्नमय कुण्डल से सुशोभित, रत्नमय कंगन, मंजीर, करधनी से अलंकृत श्रीवत्स और कौस्तुभमणि हृदय पर धारण किए हुए, मोती की मालाओं से सजे श्रीराम की स्थापना सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में षट्कोण लिखकर करें। उपलब्ध न रहने पर बेल की लकड़ी से बनी चौकी पर स्थापना करें।

वस्त्रद्वयसमायुक्तं दिव्यरत्नविभूषितम्।
अस्त्रशक्तिसमायुक्तं देवेशं पूजयेत् क्रमात्।।31।।

एक जोड़ा वस्त्र से युक्त, दिव्य रत्नों से आभूषित, अस्त्र की शक्ति से युक्त देवेश श्रीराम की पूजा क्रम से करें।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः शब्दं ततो वदेत्।
भगवत्पदमासाद्य वासुदेवाय इत्यपि।।32।।
[1]ततः सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः।
इति मन्त्रेण तन्मध्ये कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं पुनः।।33।।

सबसे पहले 'ॐ' ऐसा बोलकर तब 'नमः' पद बोलें। इसके बाद 'भगवत्' पद (भगवते) कहकर 'वासुदेवाय' यह भी कहें। तब 'सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से बीच में पुष्पाञ्जलि करें।

1. यहाँ से चार चरण क. में अनुपलब्ध।

एवं सम्पूजिते पीठे देवमावाह्य पूजयेत्।
अर्घ्यादिधूपदीपान्तमुपचारान् निधाय च।।34।।
ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिचारांश्च पूजयेत्।

इस प्रकार पीठ की पूजा कर उसपर देव श्रीराम का आवाहन कर अर्घ्य से धूप-दीप तक उपचार समर्पित कर देवेश के प्रति आत्मनिवेदन कर श्रीराम के परिचारकों की पूजा करें।

पूर्वादिषट्सु कोणेषु हृदयादीनि च क्रमात्।।35।।
मूलमन्त्रेण कर्तव्यमुपचारास्तु षोडश।
इन्द्रादिलोकपालाँश्च वसिष्ठादिमुनीनपि।।36।।
सर्वं दिक्पालमन्त्रेण पूजयेद् भक्तिसंयुतम्।
अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं देवस्य दापयेत्।।37।।

पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर षट्कोण में हृदयादि का न्यास करें और षोडशोपचार मूलमन्त्र से करें। इन्द्र आदि लोकपाल और वसिष्ठ आदि मुनियों की भी पूजा दिक्पाल के मन्त्र से भक्तिपूर्वक करें तथा अशोक के फूल से युक्त अर्घ्य समर्पित करें।

दशाननवधार्थाय देवानां हिताय च[1]।
धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां निधनाय च।।37।।
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।
गृहाणार्घ्यम्मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ।।38।।

"रावण के वध के लिए, देवताओं के कल्याण के लिए, धर्म की स्थापना के लिए तथा सज्जनों की रक्षा के लिए स्वयं भगवान् विष्णु श्रीराम के रूप में उत्पन्न हुए। हे पुण्यस्वरूप श्रीराम! मेरे द्वारा अर्पित यह अर्घ्य अपने भ्राताओं के साथ स्वीकार करें।"

प्रतिमायां विशेषेण अर्चयेद्रघुनन्दनम्।
पौराणस्तोत्रपाठैश्च वेदपारायणेन च।।39।।
नृत्यगीतैश्चवाद्यैश्च रात्रिशेषं व्यपोह्य च।

विशेष रूप से प्रतिमा पर श्रीराम की अर्चना पुराणोक्त स्तोत्रों का पाठ कर, वेद मन्त्रों का पाठ कर, नृत्य, गीत, वाद्य आदि से रात्रि में जागरण के साथ करें।

1. ग. विभीषणश्रियेऽपि वा ।

प्रातः स्नात्वा च गायत्रीं[1] जप्त्वा सन्ध्यामुपास्य च।।40।।
दशाक्षरेण मन्त्रेण देवेशं मनसा स्मरेत्।
देवदेवं प्रणम्याथ पूर्ववत् पूजयेद् व्रती।।41।।

प्रातःकाल में स्नान कर गायत्री जप एवं सन्ध्यावंदन कर दशाक्षर मन्त्र से देवेश श्रीराम का मन से स्मरण करें। देवों के देव श्रीराम को प्रणाम कर व्रत करने वाले पूर्वोक्त विधि से पूजा करें।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामनवमीव्रतविधानं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः।।

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

सर्वेतिहासतत्त्वज्ञ श्रुतिस्मृतिविदां वर।[2]
न्यासा बहुविधाः प्रोक्तास्त्वयादौ मन्त्रयोगतः।।1।।
तत्र कश्च कथं कुर्यात् कथयस्व महामुने।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे महामुनि अगस्त्य! आप सभी इतिहासों का तत्त्व जानते हैं, वेद और स्मृतियों के ज्ञानियों में श्रेष्ठ है। आपने पूर्व में मन्त्र के योग से अनेक प्रकार के न्यासों का उपदेश किया, अब यह कहें कि साधक किस न्यास को कैसे करेगें।

अगस्त्य उवाच

न्यासः स्यान्मन्त्रसन्नाहो न्यासहीनो न सिद्धिदः।।2।।
तस्मान्न्यासः प्रयत्नेन कर्तव्यः सिद्धिमिच्छता।

अगस्त्य बोले- मन्त्र का कवच न्यास कहलाता है, अतः न्यासरहित मन्त्र से सिद्धि नहीं मिलती है। इसलिए सिद्धि चाहते हुए साधक प्रयत्नपूर्वक न्यास करें।

वैष्णवानां हि मन्त्राणां सर्वेषां च विशेषतः।।3।।
न्यासः केशवकीर्त्यादि तत्त्वन्यासः ततः परम्।
न्यासः परमहंसाख्य ईरितः कविभिः सदा।।4।।

1. ग. सावित्रीं। 2. ग. श्रुतिस्मृतिविशारद ।

सभी वैष्णव-मन्त्रों का तत्त्व-न्यास केशवकीर्त्यादि-न्यास है। इसके बाद 'परमहंस' नामक न्यास कहलाता है।

मातृकां विन्दुसंयुक्तां शुद्धां मन्मथसंयुताम्।
मायावेदादिसंयुक्तां केशवादिन्तथैव च।।5।।
आभ्यन्तरीं मातृकां च कृत्वानुष्ठानमाचरेत्।

बिन्दु युक्त केवल मातृका वर्ण अथवा कामबीज (क्लीं), माया (ह्रीं) वेद (ॐ) आदि से युक्त तथा केशवादि से युक्त न्यास तथा आभ्यन्तर मातृका न्यास कर अनुष्ठान करना चाहिए।

अस्यानुष्ठानमखिलं सकलं मुनिसत्तम।।6।।
अशक्तश्चेन्मन्त्रमात्रमुच्चरन् नियतोऽन्वहम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति स रामो राममाप्नुयात्।।7।।

इसका समग्र अनुष्ठान सफल होता है। यदि साधक अशक्त हो, तो नियमपूर्वक प्रतिदिन केवल मन्त्र का जप करता हुआ सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। वह रामस्वरूप होकर श्रीराम को प्राप्त करता है।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रुतं त्वत्तो मया ब्रह्मन् रामस्याद्भुतकर्मणः।
विधानं सर्वमन्त्राणां सरहस्यमशेषतः।।8।।
दशाक्षरादिमन्त्राणां विधानं च विशेषतः।
ज्ञानञ्च सम्यग्विधिवद् ब्रह्मप्राप्त्यैक साधनम्।।9।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमञ्जसा।
कदा कुत्र कथं चेति सर्वज्ञस्त्वं यतोऽसि मे।।10।।
ब्रूहि श्रद्दधतः स्वामिन् यतः कारुणिको भवान्।।11।।

सुतीक्ष्ण बोले- अद्भुत कृत्यों के कर्ता श्रीराम की पूजा का विधान तथा उनके सभी मन्त्रों का रहस्य मैंने आपसे सुन लिया। दशाक्षर आदि मन्त्रों का विशेष विधान तथा विधिवत् सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त किया, जो ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। अब संक्षेप में मूर्ति-प्रतिष्ठा की विधि सुनना चाहता हूँ कि किस दिन, किस स्थान पर और कैसे प्रतिष्ठा करनी चाहिए। आप तो सबकुछ जानते हैं; आपके प्रति मेरी श्रद्धा है अतः हे स्वामी! मुझे यह बतलाएँ; क्योंकि आप तो करुणा करनेवाले हैं।

अगस्त्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया विद्वन् गुह्याद् गुह्यतमं परम्।
यः पश्यति हरेः पुण्यां प्रतिष्ठां विधिवत्कृताम्।।12।।
सोऽपि पुण्यतमो लोके पापात् सद्यो विमुच्यते।
श्रीरामस्य प्रतिष्ठायाः फलं वक्तुं पितामहः।।13।।
न शक्तः स्यान्महेशोऽपि सहस्रवदनोऽपि च।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण! आपने ठीक ही प्रश्न किया। यह जिस किसी भी व्यक्ति को कहने योग नहीं है, सँभालकर रखने की वस्तु है। जो विधानपूर्वक की गयी विष्णु की मूर्ति-स्थापना का दर्शन करते हैं, वे इस संसार में श्रेष्ठ पुण्य प्राप्त करते हैं और पापों से मुक्त हो जाते हैं। श्रीराम की प्रतिष्ठा का फल बखानने में ब्रह्मा, महेश और शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं।

येन केन प्रकारेण यत्र कुत्रापि वा मुने।।14।।
यैः कैश्चिद् कृतं चेत् स्यात् लोके धन्यतमा हि ते।
कालप्रतीक्षां नो कुर्याद् विधिं चापि विशेषतः।।15।।
यदैव भक्तिरुत्पन्ना तदा स्थाप्यो रघूद्वहः।

हे मुनि! जिस किसी भी विधि से जहाँ कहीं भी जो कोई व्यक्ति श्रीराम की मूर्ति-प्रतिष्ठा करते हैं, वे सबसे अधिक धन्य हो जाते हैं। इसमें अच्छे मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, उचित विधान के भी भरोसे नहीं रहना चाहिए, जिस दिन ही भक्ति उपजे, उसी दिन श्रीराम की स्थापना करनी चाहिए।

विनापि चन्द्रतारादिबलं नक्षत्रमेव च।।16।।
चैत्रशुद्धनवम्यां तु प्रतिष्ठाप्यो रघूत्तमः।
अशक्तश्चेन्नवम्यां तु माघशुद्धदिनेऽपि वा।।17।।

चैत्र शुक्ल नवमी को चन्द्र, तारा आदि का बलाबल और नक्षत्रों की शुद्धि न रहने पर भी श्रीराम की स्थापना करें। माघ मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को भी स्थापना करें।

चन्द्रतारादिसम्पन्ने प्रतिष्ठाप्यो विधानतः।
मार्गशीर्षेऽथवा पूर्णे वैशाखे वा समाहितः।।18।।
मूलादिदोषरहिते प्रतिष्ठा राघवस्य तु।
प्रकुर्याच्च विधानेन शक्त्या भक्त्या प्रयत्नतः।।19।।

अग्रहण अथवा वैशाख मास की पूर्णिमा को चन्द्र तारा आदि के बली होने पर मूल आदि नक्षत्र-दोष न रहने पर विधानपूर्वक श्रीराम की प्रतिष्ठा करें। प्रयत्न कर विधान से अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति के साथ स्थापना करें।

गोपालस्य प्रतिष्ठायां श्रावणं शस्यते सदा।
नृसिंहानां तु वैशाखे केशवस्यापि शस्यते।।20।।
चैत्रे तु रामचन्द्रस्य माघे वापि बलान्विते।
अनन्तस्यापि माघे स्यादन्येषां च यथारुचि।।21।।

श्रीकृष्ण की स्थापना में श्रावण मास, नृसिंह और केशव आदि की स्थापना में वैशाख प्रशस्त मास हैं। श्रीराम की स्थापना चैत्र मास में और चन्द्रतारा आदि बली रहे तो माघ में एवं अनन्त भगवान् की स्थापना माघ में करें। अन्य देवताओं की स्थापना अपनी रुचि के अनुसार करें।

सर्वकालेषु सर्वत्र प्रतिष्ठाप्यो रघूत्तमः।
न लग्नं न तिथिर्वारो न नक्षत्रबलं न च।।22।।

सभी कालों में, किसी भी स्थान पर श्रीराम की स्थापना करें, इसके लिए, लग्न, तिथि, दिन और नक्षत्र के बल की गणना अपेक्षित नहीं है।

चैत्रशुद्धनवम्यां च स्थाप्यो रामो मुमुक्षुभिः।
सर्वान् कामानवाप्नोति माघे शुभबलान्विते।।23।।
कुर्यात् श्रीरामचन्द्रस्य प्रतिष्ठां वै नरोत्तमः।
मार्गशीर्षे च वैशाखेऽप्येवमेव यथाविधिः।।24।।

मोक्ष चाहनेवाले चैत्र शुक्ल नवमी को श्रीराम की स्थापना करें। इससे उनकी सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। माघ मास में चन्द्र और तारा का शुभ बल देखकर मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीराम की स्थापना करें। अग्रहण और वैशाख में भी यही नियम है।

सूर्यग्रहे महापुण्ये कुरुक्षेत्रे विधानतः।
कृतैर्यत्पुण्यमाप्नोति तुलापुरुषकादिभिः।।25।।
तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मर्त्यः प्रतिष्ठाप्य रघूत्तमम्।
यः कुर्याद्रामचन्द्रस्य प्रतिष्ठां विधिवन्नरः।।26।।
ऐहिकानखिलान् भोगान् भुक्त्वा नारायणो भवेत्।

वर्द्धते तत्कुलं भौमे कल्पकोटिशताधिकम्।।27।।
नापण्डितो नापि मूर्खो न दरिद्रोऽपि तत्कुले।
नावैष्णवोऽपि जायेत कदाचिदपि कुत्रचित्।।28।।

सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में विधानपूर्वक तुलापुरुष आदि दान करने से जो पुण्य मिलता है, वही श्रीराम की मूर्तिप्रतिष्ठा करके मिलता है। जो मनुष्य विधानपूर्वक श्रीरामचन्द्र की मूर्ति स्थापित करते हैं, वे सांसारिक सभी सुखों का भोगकर नारायण हो जाते हैं। इस संसार में उनके कुल की वृद्धि सौ करोड़ कल्पों तक होती है। उनके कुल में सभी विद्वान् होते हैं कोई न तो मूर्ख होता है, न दरिद्र। कभी कहीं भी उनके कुल में विष्णु की भक्ति से हीन नहीं होते।

लौहेन निर्मिता वापि दारुणा वा यथाविधि।
कारयेत् प्रतिमां रम्यां श्रीरामस्य शुभे दिने।।29।।
लक्ष्मणस्यापि सीतायाः मारुतेश्च विशेषतः।
सीता स्वर्णनिभा कार्या लक्ष्मणोऽपि तथा भवेत्।।30।।

लोहा अथवा काष्ठ से शुभ दिन में श्रीराम की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। अपने अपने वैशिष्ट्य के अनुसार लक्ष्मण, सीता और हनुमान् की भी प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। सीता की प्रतिमा सोना के समान चमकीली होनी चाहिए, लक्ष्मण की भी उसी प्रकार होनी चाहिए।

संशोध्य देवतागारं निर्माणस्थानमुत्तमम्।
शल्यलोष्टादिवर्ज्यञ्च कुर्याद्यत्नेन शोधयेत्।।31।।
खनेत् तद्भूप्रदेशान्तं जलोत्पत्तिर्यथा भवेत्।
यथा पाषाणसिकताः पूरयेत्पूर्ववत् सुधीः।।32।।
कुट्टिमं च प्रकुर्वीत निवासस्थानमुत्तमम्।
शुद्धरम्यशिलापट्टैरनेकैश्च सुविस्तरैः।।33।।
देववासप्रदेशं तु पूर्ववद्भूमिकोन्नतम्।
हस्तद्वयोन्नतं कुर्यात् सुविस्तीर्णं मनोरमम्।।34।।
कुर्याद्देवालयं रम्यं सर्वनेत्रोत्तमं परम्[1]।

1. क. सर्वनेत्रोत्सवं यथा।

प्राकारं कारयेत्तत्र चतुर्गोपुरसंयुतम्[1]।।35।।
पीठं रम्यं प्रकुर्वीत शिलायां चोन्नतोन्नतम्।
हस्तद्वयायतं कुर्याच्चतुरस्रं सुशोभनम्।।36।।

मन्दिर तथा चारों ओर के स्थान से काँटा, गड़ा हुआ ढेला (पत्थर, ईट आदि का टुकड़ा) प्रयत्नपूर्वक हटाकर शोधन करें। तब उस स्थान पर तब तक खुदाई करें, जबतक पानी नहीं छूट जाता है। तब उस गड्डे को पत्थर और बालू आदि से भर दें और ऊपर पत्थर कूट कूट कर दृढ़ बनावें। इस उत्तम निवास स्थान को शुद्ध तथा सुन्दर बड़े शिलापट्टों से मन्दिर की भूमि को पूर्वोक्त विधि से दो हाथ ऊँची और सुन्दर रूप से विस्तृत करें। वहाँ पर रम्य देवालय का निर्माण करें, जो सबकी आँखों को अच्छा लगे। वहाँ चारों ओर मेहराव से युक्त भवन बनाएँ। उसमें पत्थर की शिला पर क्रमशः ऊँचा करते हुए सुन्दर पीठ का निर्माण करावें। यह पीठ दो हाथ लंबा-चौड़ा चौकोर और सुन्दर होना चाहिए।

अग्रभागे हनूमन्तं पीठस्य विलिखेन्मुने।
पीठशुद्धिं प्रकुर्वीत वक्ष्यमाणविधानतः।।37।।
लिखेदाग्नेयदिग्भागे सुग्रीवं द्विभुजं पुनः।
दक्षिणे भरतं चैव नैर्ऋत्ये च विभीषणम्।।38।।
पश्चिमे लक्ष्मणं चैव वायव्येऽङ्गदमेव च।
शत्रुघ्नं चोत्तरे भागे ऐशान्यामृक्षनायकम्[2]।।39।।

इस पीठ के अग्रभाग में हनुमान् की आकृति बनावें। तब आगे कहीं जानेवाली विधि से पीठ की शुद्धि करें। अग्निकोण में दो बाहों वाले सुग्रीव, दक्षिण में भरत, नैर्ऋत्य कोण में विभीषण पश्चिम में लक्ष्मण, वायव्य में अंगद, उत्तर में शत्रुघ्न और ईशान कोण में जाम्बवान् को उत्कीर्ण करें।

ततः श्रीरामचन्द्रं च पीठस्योपरि वै लिखेत्।
सौवर्णे राजते वापि ताम्रे वापि यथाविधि।।40।।
शिलायां वा प्रकुर्वीत चतुरस्रं सुशोभितम्।
द्वात्रिंशदङ्गुलं वापि षोडशाङ्गुलमेव च। ।41।।
देवस्य स्थापनस्थाने तद्यन्त्रं स्थापयेन्मुने।

1. ग. रम्यगोपुरसंयुतम्। 2. ग. ऐशान्ये जाम्बुनायकम् ।

इसके बाद पीठ के ऊपर श्रीराम को सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा प्रस्तर के पीठ पर विधि के अनुसार उत्कीर्ण करें। देवता की स्थापना के स्थान पर उनके यन्त्र की स्थापना करें। यह यन्त्र सुन्दर चौकोर, बत्तीस अथवा सोलह अंगुल परिमाण का होना चाहिए।

अङ्कुरार्पणमादौ तु सप्तपञ्चत्रिवासरे।।42।।
यथाविधि प्रकुर्वीत चन्द्रताराबलान्विते।

सबसे पहले सात, पाँच अथवा कमसे कम तीन दिन पूर्व अंकुरार्पण चन्द्र तारा आदि के बली होने पर विधान से करें।

गणेशप्रार्थनां कुर्यात् सर्वविघ्नोपशान्तये।।43।।
सुवर्णप्रतिमां पूज्यां वस्त्रद्वयसमन्विताम्।
कुटुम्बिने दरिद्राय ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।44।।
एकाक्षरो गणेशस्य ध्यानमार्गेण यत्नतः।
श्रीरामप्रतिमां वापि दशाक्षरविधानतः।।45।।
आत्ममूलेन वाचापि द्वादशाक्षरमार्गतः।
येन केनापि मार्गेण कारयेद्विधिवन्मुने।।46।।

तब गणेश की प्रार्थना सभी प्रकार के विघ्नों की शान्ति के लिए करें। जोड़ा वस्त्र से युक्त स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा कर गृहस्थ एवं दरिद्र ब्राह्मण को दान करें। गणेश का एकाक्षर मन्त्र है, जिसका ध्यान कर अथवा श्रीराम की प्रतिमा को दशाक्षर मन्त्र के विधान से अथवा अपने मूल मन्त्र से अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र की विधि से जिस किसी भी प्रकार से स्थापना कराएँ।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये श्रीरामप्रतिष्ठाविधिर्नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।29।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

सुतीक्षण उवाच

कथं दशाक्षरादीनां मार्गो वै मुनिसत्तम।
आचक्ष्व सरहस्यं मे त्वयि भक्तस्य सुव्रत।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे मुनिश्रेष्ठ! दशाक्षर आदि मन्त्र की कैसी पद्धति है, यह मुझे रहस्य के साथ बताएँ, जो आपकी दृष्टि में हो।

अगस्त्य उवाच।

साधु वक्ष्यामि ते सर्वं शृणुष्वावहितो मुने।
सीतालङ्कृतवामाङ्कं द्विभुजं चारुलोचनम्।।2।।
वामहस्तेन सीतायाः स्पृशन्तं स्तनमण्डलम्।
ज्ञानमुद्रायुतेनान्येनापि तल्लोकसुन्दरम्।।3।।
धनुर्द्वययुतेनापि लक्ष्मणेन सुशोभितम्।
कोटिकन्दर्पसंकाशं राघवं करुणाकरम्।।4।।
उपविष्टं पद्ममध्ये वीरासनमनोहरम्।
हनुमत्सेवितं चाग्रे कुर्यादिवं मनोहरम्।।5।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि! अच्छा, मैं तुम्हें सब कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। जिनके वामभाग में सीता शोभित हों, बायें हाथ से सीता के स्तनमण्डल को स्पर्श करते हुए दूसरे हाथ से ज्ञानमुद्रा धारण करनेवाले दो भुजाओं वाले एवं सुन्दर आँखों वाले श्रीराम का ध्यान करें। जो दो धनुष लिए हुए लक्ष्मण से शोभित हैं, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर हैं, कमल के मध्य में वीरासन में बैठे हुए हैं, करुणा करनेवाले हैं तथा जिनके आगे हनुमान आज्ञा की प्रतीक्षा में है।

दशाक्षरोऽयं कथितो विधिना मुनिपुङ्गवैः।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम्।।6।।
द्विभुजं कंजनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम्।
वसिष्ठाद्यैः परिवृतं हाररत्नकिरीटिनम्।।7।।
सीतासंलापचतुरं दिव्यगन्धादिशोभितम्।
चापद्वयकरेणारात् सेवितं लक्ष्मणेन च।।8।।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च पार्श्वयोरुपसेवितम्।

ऐसे श्रीराम का दशाक्षर मन्त्र 'क्लीं सीतारामचन्द्राभ्यां नमः' है। नीलकमल के समान श्यामल वर्णवाले, पीताम्बरधारी, दो हाथों वाले, कमलनयन, दिव्य सिंहासन पर स्थित, वसिष्ठ आदि पार्षदों से चारो ओर से घिरे हुए, रत्न का मुकुट धारण करनेवाले, श्रीसीता के साथ आलाप करने में चतुर, दिव्य चन्दन आदि से

शोभित दो धनुष हाथ में लिए हुए लक्ष्मण द्वारा दूर से सेवित, दोनों पार्श्वों में शत्रुघ्न और भरत से सेवित प्रभु श्रीराम ध्यातव्य हैं।

ध्यायन्ननन्यधी रामं द्वादशाक्षरमन्वहम्।।9।।
प्रजपेद्दीक्षितो नित्यं श्रीरामन्यासपूर्वकम्।
मन्त्रसन्ध्यां विधायैव त्रिकाले पूजयेत् सदा।।10।।

ऐसे श्रीराम का ध्यान करते हुए दीक्षित द्वादशाक्षर मन्त्र 'रां क्लीं ह्रीं ऐं हुं क्ष्रौं श्रीं आं क्रौं फट् स्वाहा' प्रतिदिन श्रीराम का न्यास और मन्त्रसन्ध्या कर जप करे और तीनों कालों में पूजन करे।

क्रीडन्तं सीतया सार्द्धं नीलजीमूतसन्निभम्।
वृषाकपिच्छाद्यष्टेन वसिष्ठेन स्मृतं विभुम्।।11।।
तद्वदादाय सौमित्रं चापबाणग्रहोद्यतम्।
चापद्वयभृतं पश्चाल्लक्ष्मणं तु सुशोभनम्।।12।।
सर्वलोकहितोद्युक्तं पीताम्बरधरं विभुम्।
ध्यायन् सप्ताक्षरं जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।13।।

सीता के साथ क्रीडा करते हुए, नील मेघ के समान, वृषाकपिच्छ[1] अर्थात् हनुमान् आदि आठ देवताओं और वसिष्ठ के द्वारा स्मरण किए गये श्रीराम, जिनके पीठ पीछे दो धनुष लिए हुए सुन्दर रूप वाले लक्ष्मण धनुष और बाण लेकर तैयार हैं। ऐसे श्रीराम, जो सभी लोकों की भलाई करने के लिए तैयार हैं, पीत वस्त्र धारण करते हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान कर सात अक्षरों वाला मन्त्र जपकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

सुनीलाम्बुदसंकाशं धनुर्बाणकरं मुने।
ध्यायेदष्टाक्षरं जप्त्वा राम एव भवेत्ततः।।14।।

सुन्दर नील मेघ के समान तथा हाथ में धनुष और बाण धारण करने वाले श्रीराम का ध्यान करते हुए अष्टाक्षर मन्त्र का जपकर इससे साधक राम ही हो जाये।

ज्ञानमुद्रालसद्बाहुं हनुमत्सेवितं पुनः।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च लक्ष्मणेन समावृतम्।।15।।
ध्यायेदेकाक्षरं जप्त्वा मुक्तो भवति भाजनम्।

1. वैदिक साहित्य में 'वृषाकपि' वानरवाची शब्द प्रयुक्त हुआ है।

श्रीराम हाथ से ज्ञान मुद्रा धारण किए हुए हैं, हनुमान् जिनकी सेवा कर रहे हैं तथा शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण से घिरे हुए हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान करते हुए आधार स्वरूप एकाक्षर मन्त्र का जप कर साधक मोक्ष प्राप्त करता है।

अन्याश्च मूर्त्तयः सन्ति बहवो मुनिसत्तम।।16।।
आसामन्यतमा मूर्तिः स्थापनीया प्रयत्नतः।
मन्त्राँस्तु वैष्णवानुक्त्वा मूलमन्त्रस्य चेतसा।।17।।
देवस्यापि प्रकुर्वीत ततोऽस्ति किमतः परम्।
प्राणप्रतिष्ठां तन्न्यासान् यथाविधि विचक्षणाः।।18।।
लक्ष्मणस्यापि मन्त्रस्य न्यासं देव्याश्च मारुतेः।
शत्रुघ्नभरतादीनां कुर्य्याद्यत्नेन देशिकः।।19।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! श्रीराम की ऐसी अन्य अनेक मूर्तियाँ हैं। इनमें से एक मूर्ति की स्थापना यत्नपूर्वक करनी चाहिए। वैष्णव-मन्त्रों का उच्चारण कर मूल मन्त्र का उचित प्रयोग करें, इससे बढ़कर और क्या होगा? लक्ष्मण, देवी सीता तथा हनुमान् के दिव्य-मन्त्रों को तथा शत्रुघ्न, भरत आदि के मन्त्रों का भी न्यास प्रयोग-साधक यत्नपूर्वक करें।

सुतीक्ष्ण उवाच

लक्ष्मणादिमनूनां च विधानं लक्षणं मुने।
वक्तुमर्हसि मे सर्वं भक्तस्यैवं दयानिधे।।20।।

सुतीक्ष्ण ने कहा- हे दयानिधि अगस्त्य! लक्ष्मण आदि के मन्त्रों के लक्षण एवं विधान भी आप मुझे कह सकते हैं, क्योंकि मैं भी भक्त हूँ।

अगस्त्य उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं सुविस्तरमनेकधा।
रेफपूर्वं समुद्धृत्य विन्दुलक्षणसंयुतम्।।21।।
ङेन्तोयं लक्ष्मणमनुर्नमसा च समन्वितः।
ऋषिः स्यामहमेवात्र गायत्रीच्छन्द उच्यते।।22।।
लक्ष्मणो देवता प्रोक्ता लं बीजं शक्तिरेव हि।
नमः स्याद्विनियोगे हि पुरुषार्थचतुष्टये।।23।।
दीर्घमात्राश्च बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्।

अगस्त्य बोले- सुनो! मैं अनेक प्रकार से विस्तारपूर्वक तुम्हें सबकुछ कहता हूँ। रेफ के साथ बिन्दु लगाकर पहले बोलना चाहिए। तब ङेन्त लक्ष्मण पद (लक्ष्मणाय) 'नमः' पद जोड़कर बोलें। यह लक्ष्मण मन्त्र है। इसका ऋषि मैं हूँ, गायत्री छन्द कहा जाता है। इसके देवता लक्ष्मण हैं, लं बीज है और 'नमः' शक्ति है। विनियोग में पुरुषार्थचतुष्टय कामना है। बीज के साथ दीर्घमात्राओं को जोड़कर षडंगों का न्यास करें।

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पर्णनिभेक्षणम्।
धनुर्बाणकरं रामसेवासंसक्तमानसम्।।24।।

दो भुजाओंवाले, स्वर्ण के समान सुन्दर शरीरवाले तथा कोमल पत्र के समान आँखोंवाले, हाथों में धनुष और बाण धारण करनेवाले और श्रीराम की सेवा में संलग्न चित्त वाले श्रीलक्ष्मण का ध्यान करें।

पूजापि वैष्णवे पीठे साङ्गावरणवर्जिते।
सप्तलक्षं पुरश्चर्या ततः सिद्धिं तु साधयेत्।।25।।

लक्ष्मण की पूजा भी वैष्णव पीठ पर होगी, जिसपर अंग देवता और आवरण देवता न रहें। लक्ष्मण का पुरश्चरण सात लाख मन्त्रों का है इसके बाद सिद्धि के लिए साधना करनी चाहिए।

देव्यास्तु पूर्वमेवोक्तं सह रामेण तद्भवेत्।
भरतस्यैवमेवं स्यात् शत्रुघ्नस्याप्ययं विधिः।।26।।
अगस्त्येनोदिताः ह्येते प्राधान्येनापि सत्तम।
श्रीरामपूजानिरत एतेन पूजयेत् सदा।।27।।

देवी सीता का ध्यान आदि तो श्रीराम के साथ ही पूर्व में कहे गये हैं। वहीं करें। भरत का लक्ष्मण से समान होना चाहिए। शत्रुघ्न की भी यही विधि है। अंग-देवताओं के रूप में ये प्रमुख कहे गये हैं। श्रीराम की पूजा में रत साधक इस प्रकार पूजन करें।

आदौ जाप्यं ततो वापि पूजाया राघवस्य तु।
एतेषामपि कर्तव्या भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।।28।।

श्रीराम की पूजा के प्रारम्भ में इन अंग देवताओं के मन्त्रों का जप करना चाहिए अथवा पूजा के बाद जप करना चाहिए। भोग और मोक्ष के इच्छुक साधक इन अंग-देवताओं की भी पूजा करें।